।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

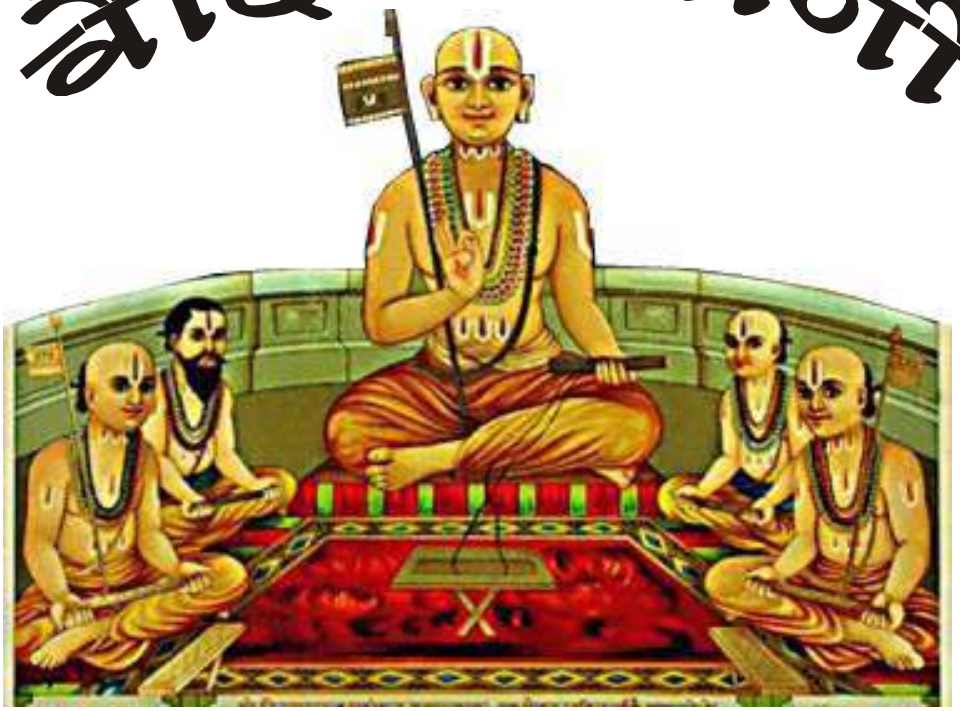

वर्ष- २७ दिसम्बर- २०१४	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अङ्क- २ रामानुजाब्द ९९६ त्रैमासिक प्रकाशन

धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जं परमपुरुष योऽहं योगिवर्याग्रगण्यैः ।
विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं तव परिजनभावं कामये कामवृत्तः।।

अर्थात् मुझ अपवित्र, अविनीत, निर्दय, निर्लज्ज को धिक्कार है; क्योंकि हे पुरुषोत्तम! श्रेष्ठ योगियों में अग्रगण्य ब्रह्मा, शिव, सनकादि जिसे ध्यान में नहीं ला पाते, मैं कामभाव से परिपूर्ण होकर भी आपके उस दास्यभाव के लिये प्रार्थना कर रहा हूँ।।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

****

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	भगवान का अन्तिम स्मरण आवश्यक	३
२.	सूर्यमण्डलगत दृश्यमान दिव्य पुरुष परमात्मा हैं	५
३.	निषिद्ध कर्म न करें	६
४.	परमपद का दर्शन सदा नित्यसूरि ही करते हैं	८
५.	एकादशीव्रत	१०
६.	करुणामयी माता श्रीलक्ष्मी जी	१२
७.	भगवदुपासना (मानसपूजा)	१६
८.	मानस में गुरु-भक्तियोग	१८
९.	दिव्य देश मुक्ति-नारायण	२०
१०.	रामायणं वेद समम्	२४
११.	श्रीरामनुजाचार्य जी का जीवन-वृत्त एवम् उनका दार्शनिक विचार	२६
१२.	विस्णुसहस्त्रनाम के (७६-१००) नामों का विशद् भाष्य (हिन्दी में)	३२
१३.	कलिकाल में माँ लक्ष्मी का प्राकट्य	३५
१४.	नारायण द्वारा उपदिष्ट चतुश्श्लोकी भागवत	३७
१५.	श्रीवैष्णवव्रत निर्णय तालिका	३९
१६.	विविधमुहूर्त्त	४०

●

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) ४० रुपये तथा आजीवन सदस्यता ५०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

वैदिक-वाणी

भगवान का अन्तिम स्मरण आवश्यक

श्री युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में प्रथम पूजा किसकी हो यह प्रश्न उपस्थित हुआ। शिशुपाल और दन्तवक्त्र को छोड़कर सभी मनिषियों ने भगवान श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा का समर्थन किया।

शिशुपाल दमघोष का पुत्र था। वह चार भुजा और तीन नेत्र के साथ जन्म लिया था। उसे माता-पिता डरकर फेंक देना चाहते थे। आकाशवाणी हुई की यह बालक विशेष पराक्रमी होगा। जिसकी गोद में रख देने पर इसकी दो भुजायें और एक नेत्र नष्ट हो जायेगा, तुम समझना कि उसी के हाथ से यह मारा जाएगा। अत: आकाशवाणी सुनकर शिशुपाल के माता-पिता ने उसे फेंका नहीं। तदनन्तर शिशुपाल के चार भुजा और तीन नेत्र के साथ जन्म हुआ है ऐसा सुनकर उसे देखने के लिए दर्शकगण आने लगे। जो उसे देखने के लिए आता शिशुपाल की माँ उसकी गोद में रखकर परीक्षा करती थी कि किसके हाथ से मेरा बालक मारा जायेगा। एक दिन श्रीबलदेव जी और भगवान श्रीकृष्ण भी शिशुपाल को देखने के लिए आये। शिशुपाल की माँ प्रथम श्रीबलदेवजी की गोद में रखी तत्पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण की गोद उस बालक को में रख दी, उनकी गोद में रखते ही शिशुपाल की दो भुजायें और एक नेत्र समाप्त हो गये। शिशुपाल की माँ समझ गई की श्रीकृष्ण से ही किसी समय मेरा पुत्र मारा जायेगा। इसलिए श्रीकृष्ण से कहा कि तुम मेरे पुत्र का वध न करना। शिशुपाल की माँ श्रीकृष्ण की फुआ थी। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं इसे एक सौ गलती तक माफ कर दूँगा। उससे अधिक गलती करने पर मैं इसे मार डालूँगा। जबसे शिशुपाल को थोड़ा होस हुआ उसी समय से अर्थात् तूतला कर बोलते समय से ही श्रीकृष्ण से वह द्वेष रखता था, सदा उन्हें गाली देते रहता था।

जब युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भगवान श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा होने लगी, उस समय यह कहकर शिशुपाल भगवान श्रीकृष्ण को गाली देना प्रारम्भ किया कि जिस सभा में अनेक वयोवृद्ध-ज्ञानवृद्ध ब्राह्मण बैठे हुए हैं वहाँ उनकी पूजा न होकर कृष्ण की पूजा हो रही है यह महान अनर्थ हो रहा है। वहाँ जितने अच्छे लोग थे जो भगवान श्रीकृष्ण को समझते थे ये कि साक्षात् ब्रह्म हैं वे उस समय सभा से बाहर चले गये। शास्त्र का वचन है कि जहाँ गुरु और भगवान की निन्दा होती हो वहाँ या तो प्रतिकार करें या वहाँ से कान बन्द करके हट जाए; क्योंकि गुरु और भगवान की निन्दा सुनना महान् पाप है।

शिशुपाल गाली देता जा रहा था, भगवान उसे गिन रहे थे जब एक सौ गाली से ऊपर बढ़ा तब भगवान ने अपने चक्र से उसका गला काट दिया। शिशुपाल की आत्मा निकल कर भगवान में प्रवेश कर गयी (अर्थात् शिशुपाल वैकुण्ठ चला गया)। यह देखकर श्री युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने नारद जी से पूछा कि परमतत्व भगवान श्रीकृष्ण में समा जाना तो बड़े-बड़े अनन्य भक्तों के लिए भी बड़ी दुर्लभ है। फिर भगवान से द्वेष करने वाले शिशुपाल को यह गति कैसे मिली? पूर्व काल में भगवान की निन्दा करने के कारण ऋषियों ने राजा वेन को मारकर नरक में डाल दिया था। अविनाशी परब्रह्म भगवान श्रीकृष्ण को शिशुपाल

पानी पी-पीकर गाली दे रहा था। इसके फलस्वरूप न तो शिशुपाल के जीभ में कोढ़ हुआ न इसे घोर अन्धकारमय नरक की ही प्राप्ति हुई। प्रत्युत जिस भगवान की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है उन्हीं में यह देखते-देखते अनायास ही लीन हो गया, इसका क्या कारण है?

नारद जी ने युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि निन्दा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार– इस शरीर के ही तो होते हैं। इस शरीर की कल्पना प्रकृति और पुरुष का ठीक-ठीक विवेक न होने के कारण ही हुई है। जब इस शरीर को ही अपना आत्मा मान लिया जाता है, तब यह मैं हूँ और यह मेरा है, ऐसा भाव बन जाता है। यही सारे भेदभाव का मूल है। इसी के कारण ताड़ना और दुर्वचनों से पीड़ा होती है।

जिस शरीर में अभिमान हो जाता है कि 'यह मैं हूँ' उस शरीर के वध से प्राणियों को अपना वध जान पड़ता है, किन्तु भगवान में तो जीवों के समान ऐसा अभिमान तो है नहीं; क्योंकि वे सर्वात्मा हैं, अद्वितीय हैं। वे जो दूसरों को दण्ड देते हैं—वह भी उनके कल्याण के लिए ही, क्रोधवश अथवा द्वेषवश नहीं। तब भगवान के सम्बन्ध में हिंसा की कल्पना तो की ही कैसे जा सकती है। इसलिए चाहे सुदृढ़ वैरभाव से या वैरहीन भक्तिभाव से, भय से, स्नेह से अथवा कामना से कैसे भी हो, भगवान में अपना मन पूर्णरूप से लगा देना चाहिये। भगवान की दृष्टि में इन भावों में कोई भेद नहीं है।

युधिष्ठिर! मेरा तो दृढ़ निश्चय है कि मनुष्य वैरभाव से भवागन में जितना तन्मय हो जाता है, उतना भक्तियोग से नहीं होता। भृङ्गी कीड़े को लाकर भीतपर अपने छिद्र में बन्द कर देता है और वह भय तथा उद्वेग से भृङ्गी का चिन्तन करते-करते उसके जैसा ही हो जाता है। यही बात भगवान श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में भी है। लीला के द्वारा मनुष्य मालूम पड़ते हुए ये सर्वशक्तिमान् भगवान ही तो हैं। इनसे वैर करने वाले भी इनका चिन्तन करते-करते पापरहित होकर इन्हीं को प्राप्त हो गये। एक नहीं, अनेकों मनुष्य काम से, द्वेष से, भय से और स्नेह से अपने मन को भगवान में लगाकर एवं अपने सारे पाप धोकर उसी प्रकार भगवान को प्राप्त हुए हैं, जैसे भक्त भक्ति से। महाराज! गोपियों ने भगवान से मिलन के तीव्र काम अर्थात् प्रेम से, कंस ने भय से, शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि राजाओं ने द्वेष से, यदुवंशियों ने परिवार के सम्बन्ध से, तुम लोगों ने स्नेह से और हमलोग ने भक्ति से अपने मन को भगवान में लगाया है। भक्तों के अतिरिक्त जो पाँच प्रकार के भगवान का चिन्तन करने वाले हैं, उनमें से राजा वेन की तो किसी में भी गणना नहीं होती (क्योंकि उसने किसी भी प्रकार से भवागन में मन नहीं लगाया था)। सारांश यह है कि चाहे जैसे हो, अपना मन भगवान श्रीकृष्ण में तन्मय कर देना चाहिये।

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।

(गीता–८.५)

अत एव भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के अष्टम अध्याय में कहा है कि जो भक्त शरीर त्याग के समय मेरा स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ता है वह मेरे भाव को प्राप्त कर लेता है। गीता (८.१३) से भी इसी बात का समर्थन किया है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मव्याहारन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

अतः कल्याण चाहने वाला मानव को समझना चाहिए कि अन्तिम समय में भगवान का स्मरण करना आवश्यक है।

सूर्यमण्डलगत दृश्यमान दिव्य पुरुष परमात्मा हैं

वेदान्त के अन्तरधिकरण में कहा गया है कि **'अन्ततस्तधर्मोपदेशात्'** यह ब्रह्मसूत्र है। वेदान्त सूत्र उपनिषद् के मन्त्रों के अनुसार किसी भी विषय का निर्णय करता है। छान्दोग्योपनिषद् अध्याय १ खण्ड ६ के मन्त्र—**'एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः', 'तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी'** इस अधिकरण का यह विषय वाक्य है। अन्तरादित्य विद्या एक ब्रह्मविद्या है। सूर्यमण्डल में विराजने वाले भगवान की उपासना ही अन्तरादित्य विद्या है। इस विद्या का प्रतिपादान इस मन्त्र से किया गया है। इस मन्त्र का अर्थ है कि सूर्यमण्डल के अन्दर जो स्वर्णसमान विग्रह वाले पुरुष दिखाई देते हैं उनका नेत्र सूर्यकिरण से विकसित कमलदलों के समान हैं।

उपनिषद् मन्त्र के विषय में यह संशय होता है कि सूर्यमण्डल के अन्दर दिखाई देने वाले पुरुष जीवात्मा हैं या परमात्मा।

पूर्वपक्ष—कर्मानुसार हाथ, पैर आदि से युक्त जीवात्मा होता है। परमात्मा कर्मानुसार शरीर को धारण नहीं करते, इसलिए जीवात्मा ही मानना चाहिए।

सिद्धान्त—पूर्वपक्ष का निराकरण करके सूर्यमण्डलगत पुरुष को परमात्मा सिद्ध करने के लिए **'अन्ततस्तद्धर्मोपदेशात्'** यह ब्रह्मसूत्र बतलाता है कि जो सूर्यमण्डल के अन्दर पुरुष दिखाई देते हैं वे परमात्मा ही हैं; क्योंकि उपर्युक्त उपनिषद् मन्त्र से स्वर्णनिर्मित पर्वतराज के समान शोभायुक्त कहे गये हैं, उनसे सहस्त्रों किरण निकलते रहते हैं। प्रत्येक किरण से सैकड़ों छोटे-छोटे किरण निकलते हैं। ऐसे किरणों से सम्पन्न परमात्मा हैं। **'कप्यासं पुण्डरीकमेव अक्षिणि'** इस मन्त्र से सूर्यगत पुरुष के नेत्र कमलदलों के समान विशाल हैं। जे कमल गहरे जल में प्रकट हुए हैं जिनका नालदण्ड सुदृढ़ है तथा जो सूर्य के किरणों से विकसित होते हैं, वे पुरुष सुन्दरभ्रू एवं ललाट वाले हैं। उनकी नासिका समुन्नत है। वह पुरुष सुन्दर मन्दहास एवं मूँगे के समान सुन्दर अधर से युक्त है, उनके कपोल कोमल एवं दिव्यकान्ति से युक्त हैं। उनका कण्ठ शङ्ख के समान है। उन्नत भुजशिखरों में उनके सुन्दर दिव्य कर्णपास लटक रहे हैं। उनकी भुजायें मोटी वर्तुलाकार एवं लम्बी हैं। वे सुन्दर लाल कर्तल अङ्गूलियों से अलङ्कृत हैं उनका मध्यभाग पतला है। उनका वक्षःस्थल विशाल है। उनके सभी अङ्ग समान रूप से विभक्त होकर अलौकिक शोभा से युक्त हैं। उनके सभी अङ्ग उचित ढंग पर सङ्गठित हैं। उनका यह अवयव सन्निवेश वर्णनातीत एवं परमदिव्य है। उनकी देह का वर्ण स्निग्धता को लेकर शोभा पा रहा है। उनके दोनों चरण खिले हुये कमल के समान सुन्दर हैं। वे अपने लिये अनुरूप बनने वाले सुन्दर दिव्य पिताम्बर को पहने हुये हैं। वे निर्मल किरीट, कुण्डल, हार, केयूर, कटक, नुपूर और उदर बन्धन इत्यादि अपरिमित अत्याश्चर्यमय अनन्त दिव्य आभूषणों से भूषित हैं। वे शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग और शार्ङ्ग ऐसे आयुध और श्रीवत्स एवं वनमाला से अलङ्कृत हैं वे अपार उत्कर्षयुक्त सौन्दर्य से सबकी मनोवृत्ति और दृष्टि का हरण करते रहते हैं। प्रत्येक अवयव की शोभा सुन्दर है। समुदाय शोभा लावण्य कहलाती है। वे लावण्यामृत सम्पूर्ण चराचर प्राणी समूह को आप्लावित करते रहते हैं। वे अत्यद्भुत एवं अचिन्त्य नित्य यौवन से सम्पन्न हैं। वे इतने सुकुमार हैं कि जिस प्रकार धीरे-धीरे पुष्प विकसित होते हैं उसी प्रकार वे धीरे-धीरे मन्दहास करते हैं। सौकुमार्य के कारण उनको ऐसे

ही मन्दहास होते रहते हैं। वे अपने परमपावन सुगन्ध से अनन्त दिशा अवकाशों को सुगन्धित करते रहते हैं। उनकी गम्भीरता को देखने पर प्रतीत होता है कि वह तीनों लोगों का आक्रमण करने के लिए प्रवृत्त हैं। वे करुणा एवं अनुराग से परिपूर्ण मधुर लोचनों से आश्रित वर्ग को कटाक्षित करते रहते हैं। शास्त्र प्रमाण के अनुसार इस प्रकार जो पुरुष प्रवर सूर्यमण्डल में दिखाई दे रहे हैं, वे परब्रह्म परमात्मा श्रीमन्नारायण भगवान ही हैं जो सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रयल की लीला करते रहते हैं, नित्य-निर्दोष एवं समस्त कल्याण गुणों के निधि हैं तथा वे स्वेतर समस्त वस्तुओं से अत्यन्त विलक्षण हैं। यह परब्रह्म श्रीमन्नारायण भगवान ही वह पुरुष हैं जो सूर्यमण्डल में दिखाई देते हैं।

ध्येयः सदा सवित्रिमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्यमयवपुर्धृतशङ्खचक्रः।।

निषिद्ध कर्म न करें

जीवात्मा निर्मल है, उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं है। ये परमात्मा का स्वाभाविक दास है। भगवत् निमित्त कर्म करना ही जीवात्मा का धर्म है। यह अणु रूप है। वेदों के अनुसार सूई के अग्रभाग को सौ टुकड़ा कर दे उसका जो एक भाग होता है उससे भी सूक्ष्म जीवात्मा का स्वरूप है। जीवात्मा अनन्त है। यह प्राणियों के हृदय प्रदेश में रहता है। माया से सम्बन्ध होने के कारण जीवात्मा में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। बद्ध जीव में ये सब विकार रहते हैं। इसके कारण शरीर के माध्यम से जीवात्मा को अनेक प्रकार का कष्ट भोगना पड़ता है। शरीरधारियों में शास्त्राधिकारी मानव होता है। किस काम को करे और किस काम को नहीं करें यह शास्त्रीय संविधान मानव के लिए है। जिस कर्म को करने के लिए शास्त्र कहता है उसे ही मनुष्य को करना चाहिए। अत एव भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

अर्थात् शास्त्र के विरुद्ध आचरण करने पर न लौकिक सुख प्राप्त होता है और न मृत्यु के बाद उसे पारलौकिक सुख मिलता है। शास्त्रानुकूल कर्म करने से अनादि काल से सञ्चित जीवात्मा का मल साफ होता है। उससे वह उत्तम लोक का अधिकारी होता है। शास्त्रविरुद्ध कर्म करने पर आत्मा में विशेष मल (विकार) उत्पन्न होता है। उससे जीवात्मा सच्चे सुखों से वञ्चित रह जाता है। शास्त्र जिस कर्म को करने के लिए निषेध करता है वैसे निषेध कर्म चार प्रकार के होते हैं। इसका समर्थन करते हुए दक्षिण भारत के सच्चे सन्त श्रीलोकाचार्य स्वामी ने श्रीवचनभूषण में ३१९ एवं ३२०वाँ सूत्र से निषिद्ध कर्म को चार विभाग किया है—

निषिद्धानुष्ठानं चतुर्विधम्–'तच्चाकृत्यकरणं भगवदपचारो भागवतापचारोऽसह्यापचारश्च'।

(1) अकृत्यकरण ये हैं

(१) मन, वाणी और शरीर से दूसरे जीव को कष्ट देना।

(२) समस्त जगत् के नियन्ता परमात्मा को छोड़कर दूसरे देवों की स्तुति करना।

(३) दूसरे की स्त्री को कुदृष्टि से देखना।

(४) झूठ बोलना, अभष्यभक्षण करना, अर्थात् शराब पीना, माँस, मछली, लहसुन, प्याज, जूठा एवं वासी खाना–ये तमोगुण उत्पन्न करने वाली चीजे हैं। इनसे दुर्बुद्धि हो जाती है। अत: इनका सेवन नहीं करना चाहिए।

(५) दूसरे के धन का अपहरण करना।

(६) असत्य बोलना।

(2) भगवदापचार ये हैं

(१) भगवान श्रीमन्नारायण को अन्य देवताओं के बाराबर मानना।

(२) भगवान श्रीराम तथा भगवान श्रीकृष्ण आदि को मनुष्य समझना या मनुष्य के समान मानना महान अपराध है; क्योंकि भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि का विग्रह दिव्य है इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—**'जन्मकर्म च मे दिव्यम्'।**

(३) अपने वर्ण और आश्रम के विरुद्ध आचरण करना।

(४) भगवान की अर्चामूर्ति अष्टधातु की हो, पाषाण की हो या काष्ट आदि की हो उसे धातु, पाषाण, काष्ठ आदि रूप में देखना अपराध है; क्योंकि उनमें वैदिक विधि से प्रतिष्ठा कर देने पर उनका विग्रह दिव्य हो जाता है। अत: भगवान की मूर्ति का दिव्यविग्रह के रूप में दर्शन करे। पाषाण आदि के रूप में देखना भगवतापचार है। अर्थात् भगवान के प्रति महान अपराध है।

(५) वर्ण और आश्रम के विपरीत आचरण से मनुष्य का अध:पतन होता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—**'स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर:'।**

वर्णाश्रम के अनुकूल अपने-अपने कर्म के पालन से सिद्धि मिलती है। वर्ण धर्म का पालन करना ईश्वर की उपासना है। इसलिए भगवान ने कहा है—**'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:'।**

श्रीरामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में लक्ष्मण को उपदेश करते हुए भगवान श्रीराम ने कहा है—**निज निज कर्म निरत श्रुति रिति।**

यही कार फल पुनि विषय विरागा।
तब मम धर्म उपज अनुरागा।।

अर्थात् शास्त्र विहित अनेक कर्म के पालन से भगवान के चरणकमल में प्रेम होता है।

(६) यह जीवात्मा परमात्मा की वस्तु है। इससे परमात्मा में लगा देने के लिए ही मानव शरीर मिला है। **'विचित्रादेहसम्पतिर्ईश्वरायनिवेदितुम्'** अर्थात् पशु-पक्षी आदि के अपेक्षा विलक्षण विवेक प्रधान मानव शरीर प्रभु के चरणों में समर्पण के लिए मिला है। जीवात्मा को परमात्मा की सेवा में नहीं लगाना आत्मापहरण है। इसलिए कहा है—**'किं तेन न कृतं पापं चौरेणापहारिणा'** अर्थात् उसने कौन-सा पाप नहीं किया जो अपने आत्मा को परमात्मा में नहीं लगाया।

(७) भगवान के निमित्त समर्पण किया हुआ द्रव्य तथा खेत आदि का अपने उपयोग में लाना बहुत बड़ा अपराध है। जिन लोगों ने भगवान के निमित्त लिखी हुई सम्पत्ति को अपने उपभोग में लाया उसका फल अच्छा नहीं हुआ है। भगवान के निमित्त समर्पित सम्पत्ति को भगवान की उपासना राग-भोग एवं उनके निमित्त उत्सव आदि में लगाना चाहिए।

(3) भागवतापचार

अहङ्कार एवं लोभ के कारण भागवतों (श्रीवैष्णवों) को कष्ट देते हैं उसे भागवतापचार कहते हैं। भागवतापचार से मनुष्य आयु, लक्ष्मी, यश और

उत्तमसुख की हानि होती है। अत: किसी भागवत के प्रति अपराध नहीं करे। परम भागवत अम्बरीष के प्रति अपराध करने वाले दुर्वासा को कष्ट भोगना पड़ा। भक्त प्रह्लाद के प्रति अपराध करने वाला हिरण्यकशिपु मृत्यु का शिकार बना। इसलिए गोस्वामी जी ने लिखा है—

जो अपराध भगत कर करई।
रामरोष पावक मह जरई।।
लोकहुँ वेद विदित इतिहासा।
यह महिमा जानही दुर्वासा।।

(4) असह्यापचार

विना कारण के भगवान एवं भागवतों के प्रति जो अपराध होता है उसको असह्यापचार कहते हैं। असह्यापचार सबसे कठिन होता है भगवत और भागवत दोनों के प्रति अपराध करने वाला हिरण्यकशिपु हुआ। भगवान विष्णु के भजन करने वाले भक्त प्रह्लाद थे। उनको हिरण्यकशिपु ने कहा था कि भगवान विष्णु का नाम मत लो वह हमारे कुल के शत्रु हैं। श्रीप्रह्लाद ने हिरण्यकशिपु के कहने पर भी भगवान विष्णु का भजन नहीं छोड़ा। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद का वध करने के लिए एक उपाय बाकि नहीं रखा; परन्तु उससे प्रह्लाद की हानि नहीं हुई। अत: भगवान नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध किया।

श्रीरामानुज स्वामी ने गद्यत्रय के शरणागति गद्य में भी इन अपराधों को स्वीकार किया है। अत एव इन अपराधों को नाश करने के लिए भगवान से क्षमा माँगे हैं।

मनोवाक्कायैरनादिकालप्रवृत्तानन्ताकृत्यकरण कृत्याकरण भगवदपचार–भागवतापचारासह्यापचार रूप नानाविधानन्तापचारान् आरब्धकार्यान् अनारब्धकार्यान् कृतान् क्रियमाणान् करिष्यमाणांश्च सर्वानशेषत: क्षमस्व।

अर्थात् मन, वाणी और शरीर द्वारा अनादिकाल से मेरे किये हुये असंख्य नहीं करने योग्य काम करने, करने योग्य काम नहीं करने, भगवदपचार, भागवतापचार, असह्यापचार रूप अनेक प्रकार के अगणित अपचारों को जिन्होंने अपना फलभोग दान आरम्भ कर दिया है अथवा नहीं किया है, जो किये जा चुके हैं, किये जा रहे हैं अथवा किये जाने वाले हैं आप विशेष रूप से क्षमा करें।

●

परमपद का दर्शन सदा नित्यसूरि ही करते हैं

भगवान की दो विभूतियाँ हैं लीलाविभूति और त्रिपादविभूति। यह जगत् लीलाविभूति है सारे बद्धजीव इसी संसार में लीला कर रहे हैं। यह भगवान के एकपाद में है और त्रिपादविभूति तीन पाद में है। जिसे वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत आदि नामों से वर्णन किया गया है।

'पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि'।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जीव तीन प्रकार के माने जाते हैं—

*(१) **बद्धजीव***—जो संसार की माया में बँधे हुए हैं।

*(२) **मुक्तजीव***—जो संसार में आये और भगवत्कृपा से माया से छुटकर मुक्त हो गये।

*(३) **नित्यजीव***—जो कभी संसार में नहीं आये हैं और न तो आने वाले ही हैं। अनन्त गरूड़ और विष्वक्सेन आदि जीव नित्यजीव में माने जाते हैं। ये सदा से मुक्त हैं इसलिए नित्यमुक्त कहलाते हैं। ये नित्यजीव ही नित्य सूरि कहे जाते हैं।

इनको सिद्ध करने वाला प्रमाण मुक्तोपनिषद् एवं विष्णुसूक्त का यह मन्त्र है—**'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः'** । मुक्तजीव भी श्रीभगवान के परमपद का दर्शन करते रहते; परन्तु वे सदा दर्शन नहीं करते हैं; क्योंकि पहले वे संसार की माया में पड़े हुए थे। माया से मुक्त होकर जब वे गये हैं तब वे परमपद का दर्शन करते हैं; परन्तु उपर्युक्त मन्त्र में **'सदा पश्यन्ति'** शब्द आया है। इसलिए परमपद का सदा से दर्शन करने वाले नित्य सूरि ही हैं। सदा दर्शन करने वाले मुक्त नहीं हो सकते। अत एव सदा दर्शन करने वाले नित्य सूरियों से मुक्त भिन्न सिद्ध होते हैं।

भगवान का नित्य निवास स्थान परमपद ही है। इसमें अनेको वैदिक मन्त्र प्रमाण हैं। श्रीविष्णु का परमपद और श्रीविष्णु में भेद है। श्रुति में विष्णु के स्वरूप के अतिरिक्त परमपद का प्रतिपादन किया गया है।

एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनो हि ये।
तेषां तत् परमं स्थानं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ।।

(विष्णुपुराण)

अर्थात् अनन्य होकर सदा ब्रह्म ध्यान करने वाले जो योगी हैं उनको वह परम स्थान प्राप्त होता है, जिसका दर्शन सूरिगण करते हैं। इस श्लोक में **'यद्वै पश्यन्ति सूरयः'** कहकर श्रुति के अन्तर्गत **'सदा पश्यन्ति सूरयः'** की व्याख्या की गई है। इससे सिद्ध होता है कि श्रीविष्णुपुराण उस श्रुति को दिव्य स्थानपरक मानकर व्याख्या करता है।

ॐ विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममेरजाँꣳसि यो अस्थभा यदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगात्र।

ॐ विष्णोरराटमसि विष्णोः पृष्ठमसि विष्णोश्नप्त्रेस्थः विष्णो स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवमसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा।

ॐ तदस्य प्रियमपि पाथो अस्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति उरु क्रमस्य सहि वन्धुरित्था विष्णो पदे परमे मध्यउत्सः।

ॐ प्रतिद्विष्णुस्तपसे वीर्याय मृगो न भीमः कुचारो गरिष्ठाः यस्योरूषु त्रिषु विक्रमणेषु अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।

ॐ परोमात्रया तनुवा वृधान नते महित्वमन्वश्नुवन्ति उभे ते विद्म रजसि पृथिव्या विष्णोर्देवत्वं परमस्यवित्से।

ॐ विचक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णु मनुषे दशस्यन्। ध्रुवासोऽस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार।

ॐ त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां विचक्रमे शतर्चसं महित्वा प्रविष्णुरस्तु तव सस्त वीर्यान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्यनाम्।

ॐ अतो देवा अवन्तु नो य तो विष्णु विचक्रमे, पृथिव्याः सप्तधा मभि।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् समूढमस्य पाꣳसूरे।

ॐ त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। ततो धर्माणि धारयन्।

ॐ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि परस्यसे इन्द्रस्य भुज्यः सखा।

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं, सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीय चक्षु राततम् तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत्परमं पदम्।

एकादशीव्रत

व्रतों में एकादशीव्रत उत्तम है। एकादशी तिथि के स्वामी भगवान हैं। अत एव एकादशी तिथि को हरि तिथि कहते हैं। **'न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं हरि दिने'** । अर्थात् हरि दिन एकादशी को भूलकर भी अन्न न खाये। आठ वर्ष से ऊपर और अस्सी वर्ष के वय तक एकादशीव्रत अवश्य करे।

एकादशी में कुछ आवश्यक नियमों पर ध्यान देना आवश्यक है। दशमीविद्धा एकादशी नहीं करे। दशमी तिथि ५६ दण्ड हो या दशमी का क्षय हो अथवा एकादशी का मान ५४ दण्ड से ऊपर हो तो एकादशी तिथि को व्रत नहीं कर द्वादशी तिथि को व्रत करे और त्रयोदशी को पारण करे। अगर दो एकादशी हो तो द्वितीय एकादशी को व्रत करे। ऐसे शुद्ध एकादशी तिथि को व्रत करने पर द्वादशी में पारण करे।

एकादशी व्रत करने से फाईलेरिया आदि की बिमारियाँ नहीं होती है। अगर निर्जला एकादशी करने में असमर्थ हो तो फलाहार करके भी एकादशी व्रत करे।

सर्वपापप्रशमनं पुण्यमात्यन्तिकं तथा।
गोविन्दस्मारणं नृणामेकादश्यामुपोषणम्।।

(ब्रह्मवैवर्त)

एकादशी के दिन उपवास कर व्रत का रखना सब पापों को नाश करने वाला, अत्यन्त पुण्यकारक तथा मनुष्यों को भगवान का स्मरण कराने वाला होता है। शास्त्रों में इनकी महिमा का वर्णन तो बहुत है। कथा-वार्ता में सुना तो बहुत है; परन्तु आज तो प्रत्यक्ष देख लिया। श्रीरुक्मांगद जी एकादशी के दिन हाथी पर नगाड़ा रखकर बजवाते और सब ओर यह घोषणा कराते थे कि आज एकादशी तिथि है आज के दिन आठ वर्ष से अधिक और पचासी वर्ष से कम आयु वाला जो मन्दबुद्धि मनुष्य भोजन करेगा, वह मेरे द्वारा दण्डनीय होगा, उसे नगर से निकाल दिया जायेगा। औरों की तो बात ही क्या, पिता, भ्राता, पुत्र, पत्नी और मेरा मित्र ही क्यों नहीं हो, यदि वह एकादशी के दिन भोजन करेगा तो उसे कठोर दण्ड दिया जायेगा।

इस प्रकार घोषणा करने पर सबलोग एकादशी व्रत करके भगवान विष्णु के लोक में जाने लगे। यमपुरी सूनी हो गई। इससे यमराज बड़े ही चिन्तित हुये। वे प्रजापति ब्रह्मा के पास गये और उन्हें यमपुरी के उजाड़ होने तथा अपनी बेकारी का समाचार सुनाया। ब्रह्माजी ने उन्हें शान्त किया और एकादशी तथा भगवद्भक्तों की महिमा का वर्णन किया। पश्चात् ब्रह्मा ने यमराज के बहुत आग्रह करने पर उनकी इच्छा की पूर्ति एवं भक्त रुक्मांगद के गौरव को बढ़ाने के लिये माया की एक मोहिनी नाम की स्त्री बनाया और श्रीरुक्मांगद जी को मोहित करने के लिये उसे मन्दराचल पर भेजा। शिकार खेलने के लिये वन में गये हुए राजा रुक्मांगद बढ़ते-बढ़ते मन्दराचल पर जा पहुँचे और मोहिनी द्वारा मधुर स्वर से गाये गये गीत के शब्दों का अनुसन्धान करते हुये उसके समीप जा पहुँचे। उसके लोकोत्तर रूप लावण्य को देखकर राजा ने मुग्ध होकर प्रणय-प्रस्ताव किया। तब उसने कहा कि मेरी एक शर्त यह है कि मैं जो कुछ भी कहूँ वही आपको करना पड़ेगा। राजा तो मोहासक्त हो रहे थे तत्काल प्रतिज्ञा कर लिये— देवि! तुम जिससे सन्तुष्ट रहो, मैं वही शर्त स्वीकार करता हूँ। मोहिनी राजा रुक्मांगद जी के साथ

राजधानी की ओर चल पड़ी। महाराज की परम सती-साध्वी, पति-परायण पत्नी सन्ध्यावली तथा मातृ-पितृ भक्त राजकुमार अङ्गद ने बड़े उत्साह के साथ दोनों का स्वागत किया। दिन बड़े सुख से बीतने लगे।

अन्त में एकादशी का पुण्य पर्व आया। शहर में ठिंठोरा पीटा जाने लगा—कल एकादशी है सावधान! कोई भूल से भी अन्न न ग्रहण करे। मोहिनी के कानों में ये शब्द पहुँचे। उसने महाराज से पूछा—यह कैसी घोषणा है? रुक्मांगद ने सारी परिस्थिति बतलायी और स्वयं भी व्रत करने के लिये तत्पर होने लगे। मोहिनी ने कहा—महाराज! आपको मेरी एक बात माननी होगी? राजा ने कहा—प्रिये! यह तो मेरी प्रतिज्ञा ही है। तुम निःसङ्कोच हृदय की बात कहो। मोहिनी ने कहा—आप एकादशी व्रत नहीं करें। महाराज तो स्तब्ध हो गये। बहुत सँभलकर बोले—मोहिनि! मैं तुम्हारी सब बात मानने के लिए तैयार हूँ और मानता ही हूँ; परन्तु देवि! मुझसे व्रत छोड़ने के लिए मत कहो। यह मेरे लिए नितान्त असम्भव है। मोहिनी ने कहा—यह तो हो ही नहीं सकता। आपने स्वयं ऐसी प्रतिज्ञा की है। फिर आप अपनी की हुई प्रतिज्ञा से हट ही कैसे सकते हैं? रुक्मांगद जी ने कहा—तुम किसी भी शर्त पर यह व्रत करने की आज्ञा मुझे दो। मोहिनी ने कहा—यदि ऐसी बात है, तो आप अपने हाथ से अपने प्रिय पुत्र धर्माङ्गद का सिर काटकर मुझे दे दीजिये। श्रीरुक्मांगद बड़े धर्म सङ्कट में पड़ गये। श्रीधर्माङ्गद जी को जब यह बात मालूम हुई तो वे पिता के समक्ष सिर झुकाकर बारम्बार पिताजी से अपना सिर काटने के लिए अनुरोध करने लगे। धर्माङ्गद जी ने पिता को समझाया—पिताजि! मेरे लिये इससे बढ़कर सौभाग्य का सुअवसर नहीं मिल सकता है। आज मैं धन्य हुआ जो अपना सिर देकर आपकी प्रतिज्ञा और माता का मनोरथ पूर्ण करूँगा। महारानी श्रीसन्ध्यावली जी ने भी धर्माङ्गद के वचनों का समर्थन किया। राजा रुक्माङ्गद ज्यों ही तलवार चलाने को प्रस्तुत हुए कि पृथ्वी काँप उठी। साक्षात् भगवान श्रीहरि वहाँ आविर्भूत हो गये और अपने श्रीकर-कमलों से राजा का हाथ पकड़ लिया और बोले—

चलो धाम मम बैठि विमाना।

रुक्मांगद ने कहा—

इकलो नहिं जैंहौं भगवाना।।
अवधपुरी की प्रजा हमारी।
मोकूँ अहैं प्राणते प्यारी।।
तब सब कहँ संग लै असुरारि।
गये धाम इमि पुरी उधारी।।

तुलसी-पूजन

तुलसी में दीप दिखलाने वाले तथा भक्ति-पूर्वक तुलसी की सेवा करने वाले को आयु, यश, बल तथा धन की वृद्धि होती है और राहु, शनि, मङ्गल जैसे क्रूर ग्रहों से बचाव होता है। यात्रा के समय तुलसी के दर्शन से यात्रा सफल होती है। इस प्रकार तुलसी-पूजन से प्राणी ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों सुखों का भाजन बनता है। अतः पुत्र, आरोग्य सौभाग्य आदि का मनोरथ रखने वाली नारियाँ तुलसी जी में जल दे तथा सायंकाल दीप जलाकर निम्नलिखित मन्त्र से प्रार्थना करें—

सौभाग्यं सन्ततिं देहि धनं धान्यं च मे सदा।
आरोग्यं शोकसमनं कुरु मे माधवप्रिये।।

करुणामयी माता श्रीलक्ष्मी जी

लक्ष्मीजी भगवान का संग कभी नहीं छोड़ने वाली हैं। जगज्जननी श्रीलक्ष्मी जी नित्य हैं और जिस प्रकार श्रीविष्णु भगवान सर्वव्यापक हैं। वैसे ही ये भी हैं। विष्णु अर्थ हैं तो लक्ष्मीजी वाणी हैं, हरि न्याय हैं तो ये नीति हैं। भगवान विष्णु बोध हैं तो ये बुद्धि हैं तथा वे धर्म हैं तो लक्ष्मीजी सत्क्रिया है। यथा—

नित्यैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतोविष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम।।
अर्थोंविष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरयं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रियात्वियम्।।

(विष्णुपुराण)

श्रीहरि और श्रीहरिप्रिया का यह तात्विक ऐक्य श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी वर्णन किया है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न।।

इन्द्र ने भी लक्ष्मीजी की प्रार्थना करते हुये उपर्युक्त सिद्धान्त का ही समर्थन किया है। यथा—

त्वं माता सर्वलोकानां देव देवो हरिः पिता।
त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम्।।

(विष्णुपुराण)

हे अम्ब! तुम सभी लोकों की माता हो तथा देव-देवेश्वर विष्णु पिता हैं। तुमसे और भगवान विष्णु से यह स्थावर-जङ्गम जगत् व्याप्त है।

सर्व-शक्तिमान भगवान जब-जब लीला-शरीर धारण करते हैं तब-तब महाशक्ति भी उनका अनुसरण करके लीला-शरीर धारण करती हैं और उनकी लीला में सहयोग देती हैं। यथा—

राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी।।
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णुर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम्।।

श्रीभगवान् के श्रीराम रूप में अवतार लेने पर श्री लक्ष्मीजी श्रीसीता के रूप में अवतरित हुई। वे ही कृष्णावतार में रुक्मिणी हुई। इसी तरह अन्यान्य अवतारों में भी वे प्रभु से पृथक् नहीं हुई। देव बनने पर वे देवी बनती हैं और प्रभु के मानवावतार ग्रहण करने पर मानवी बन जाती हैं। भगवान विष्णु के अनुरूप ही ये भी लीला शरीर धारण करती हैं।

वैसे तो श्रीलक्ष्मी जी का स्वरूप, रूप, गुण, विभव और ऐश्वर्यशील आदि भगवान नारायण के अभिमत और अनुरूप ही है; परन्तु जगत्पिता होने के कारण भगवान में यत्र-तत्र जीवों के कुपथगामी होने पर पितृसुलभ हितकारी कोप भी दृष्टिगोचर होता है वहाँ जगज्जननी में तो जीव की अपराध दशा में भी वात्सल्य, क्षमा, करुणा आदि गुण ही देखने में आते हैं। यह बात श्रीजी में विशेष है। जब कभी भगवान अपराधी जीव को दण्ड देकर शुद्ध करने का विचार करते हैं तो जगज्जननी अपने सहज मातृ-स्वभाव से प्रेरित होकर विविध प्रयत्नों द्वारा जीव को क्षमादान दिलवाकर उसे दण्डमुक्त कराती हैं। यथा—

पितेव त्वत्प्रेयान् जरनि परिपूर्णागसि जने,
हित स्रोतोवृत्या भवति च कदाचित् कलुषधीः।
किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितै-
रूपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः।।

(श्रीगुणरत्नकोश)

हे माता! परिपूर्ण पापी जीव के विषय में हित करने की वृत्ति से पिता के समान आपके स्वामी जब कभी कुपित होते हैं। उस समय में आप–यह क्या हुआ? इस जगत् में अपराध रहित कौन है? आदि इस प्रकार के उपायों से इस जीव के अपराधों को

ईश्वर के चित्त से भुलाकर उसे अपनाती हैं। इस कारण से आप हमलोगों की माता हैं।

यह तो रही नित्यधाम की बात। लीलावतार काल में भी जगज्जननी का करुणा-सागर उमड़ता हुआ ही दिखाई पड़ता है। महा अपराधी जयन्त के लिए भी आपका वात्सल्य उमड़ पड़ा तो और की तो बात ही क्या?

पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसं तदा।
तच्छिरः पादयोस्तस्य योजयामास जानकी।।
प्राण संशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताय वायसम्।
त्राहि त्राहीति भर्तारमुवाच दयया विभुम्।।
तमुत्थाप्य करेणाथ कृपा पीयूष सागरः।
ररक्ष रामो गुणवान् वायसं दययैक्षत।।

(पद्मपुराण)

देवी श्रीजानकी जी ने भूमि पर सामने पड़े हुए काक जन्यन्त के सिर को श्रीराम जी के चरणों में लगा दिया और प्राण जाने के भय से डरे हुए उस कौवे को देखकर श्रीजानकी जी ने दया करके अपने समर्थ स्वामी से इसकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये इस प्रकार कहा। कृपा-निधान श्रीराम जी ने उस कौवे को अपने हाथ से उठाकर उसकी रक्षा किया और फिर वे दया-दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे।

पुनः जैसे बालक के कुएँ में गिरने पर माता उसे निकालने के लिए स्वयं कूद पड़ती है उसी तरह जगज्जननी ने देवाङ्गनाओं सहित देवताओं को रावण के बन्दीगृह में पड़े देखकर उनको निकालने के लिए स्वयं भी बन्दिनी होना स्वीकार किया और जब तक रावण का नाश कराकर उनको छुड़ा नहीं दिया तब तक श्रीहनुमान जी के साथ भी लौटना स्वीकार नहीं किया।

इससे भी अधिक करुणामयी माँ की करुणा का दर्शन तो उस समय होता है जब रावण वधोपरान्त श्रीराम जी ने हनुमन्तलाल को विजय-सन्देश सुनाने के लिए श्रीजानकी जी के पास भेजा। इस सुखद-संवाद से हर्षोल्लसित मिथिलेश-नन्दिनी ने आनन्दमग्न होकर हनुमान से मन-भावता वर माँगने को कहा। तब श्रीहनुमान जी ने उन राक्षसियों के चित्रवध (अङ्ग-अङ्ग टुकड़े-टुकड़े कर डालने की क्रिया) करने की आज्ञा माँगी। यह सुनकर जगज्जननी का हृदय दया से विह्वल हो गया। वे श्रीहनुमान जी को समझाती हुई बोलीं—

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः।।
पापानां वाशुभानां वा वधार्हाणां प्लवंगम।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।।

पापियों के पापों की ओर धर्मात्मा पुरुष ध्यान नहीं देते हैं। तुम्हें तो इस मर्यादा की रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि सन्तों का भूषण सच्चरित्र ही है। पापी हो, अशुभ आचरण करने वाला हो और चाहे वह वध करने योग्य ही क्यों नहीं हो, सज्जनों को उस पर करुणा करनी चाहिये; क्योंकि ऐसा कोई भी नहीं, जो अपराध नहीं करता हो। यह कहकर फिर श्रीजानकी जी ने हनुमान जी को एक कथा सुनाई—

पूर्वकाल में किसी जङ्गल में एक बाघ के खदेड़ने पर एक व्याध वृक्ष पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर ऋक्ष (भालू) निवास करता था। वृक्ष के समीप जाकर बाघ ने भालू से कहा कि तुम इस व्याध को अपने वृक्ष पर से नीचे गिरा दो; क्योंकि यह हमलोगों का शत्रु है। भालू ने कहा—मेरे निवास स्थान पर आये हुए इस व्याध को मैं नहीं गिराऊँगा, ऐसा करने से शरणागति धर्म में महान् कलङ्क लग जायेगा। ऐसा कहकर भालू सो गया। तब बाघ ने व्याध से कहा कि मैं तुमको छोड़ दूँगा, तुम सोये हुए भालू को वृक्ष से नीचे गिरा दो। दुष्ट व्याध ने सोये हुए भालू को वृक्ष पर से ढकेल दिया, किन्तु पूर्व अभ्यास के बल से भालू वृक्ष की शाखा को पकड़

कर बच गया, नीचे नहीं गिरा। तब बाघ ने भालू से कहा—देखो कैसा दुष्ट यह व्याध है। तुम्हारे साथ इसने विश्वासघात किया, अत: अब इस विश्वासघाती व्याध को तुम नीचे ढकेल दो। बाघ के इस प्रकार बार-बार कहने पर भी भालू ने व्याध को नीचे नहीं गिराया और बाघ से कहा कि मैं इस अपराधी की भी रक्षा करूँगा; क्योंकि शरणागति धर्म में अपराधियों की भी रक्षा का विधान है।

श्रीजानकी जी ने राक्षसियों की रक्षा में शरणागति धर्म का हवाला दिया है। प्रश्न होगा कि ये दुष्ट-स्वभावा राक्षसियाँ शरण में कब आई? समाधान—सुन्दरकाण्ड में जब त्रिजटा ने श्रीराम विजय सूचक अपने स्वप्न का वृत्तान्त राक्षसियों से कहा, तब सभी राक्षसियाँ अत्यन्त भयभीत होकर त्रिजटा से अपनी रक्षा का उपाय पूछने लगीं। उस समय त्रिजटा ने कहा कि यद्यपि तुम लोगों ने वैदेही को बहुत सताया है; परन्तु मैं उनके स्वभाव को जानती हूँ, वह प्रणाम मात्र से ही प्रसन्न हो जाती हैं। अत: सब राक्षसियों के महान भय से रक्षा के लिए श्रीमैथिली की प्रणतिमात्र ही पर्याप्त है—

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्।।

(वा०रा०)

राक्षसियाँ आपस में यह विचार-विमर्श ही कर रही थीं, अभी प्रणाम किया भी नहीं इधर करुणामयी माता ने केवल प्रणाम करने की बात सुनकर उनकी शरणागति मान ली।

तत: सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता।
अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि व:।।

प्रियतम विजय से हर्षित हृदया श्रीजानकी जी ने अपनी ओर से उन राक्षसियों से कहा—यदि सचमुच मेरे प्रियतम विजयी होंगे तो मैं तुमलोगों की सब प्रकार से रक्षा कर लूँगी।

इस प्रकार प्रणाम मात्र भी न करने वाली राक्षसियों को स्व-स्वभाववश ही शरणागत मानकर श्रीहनुमान जी से समझा-बुझाकर रक्षा करायीं। श्रीजानकी जी के इस निर्हेतु-वत्सल स्वभाव पर मुग्ध होकर श्रीभट्टार्क स्वामी कहते हैं—

मातर्मैथिलि! राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया,
रक्षन्त्या पवनात्सजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।
काकं तं च विभीषण शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षत:,
सा न: सान्द्रमहागस: सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी।।

(श्रीगुणरत्नकोश)

हे माता! हे मैथिलि! तात्कालिक अपराध करने वाली राक्षसियों की श्रीहनुमान से रक्षा कराने वाली आपकी कृपा से 'मैं आपकी शरण हूँ' ऐसा वचन कहने वाले शरणागत जयन्त और विभीष्ण जी की रक्षा कराने वाली श्रीराम जी की कृपा को अत्यन्त लघु सिद्ध कर दिया। वह आपकी निर्हेतुकी कृपा अत्यन्त पापी हम सरीखे आश्रितों को सुखी करे।

ऐसी भगवान नारायण के समान रूप, गुण, वैभव शाली, कृपा गुणाधिका श्रीलक्ष्मी जी तत्वत: भगवान से अभिन्न होकर भी नित्य पत्नी भाव को स्वीकार कर अत्यन्त अनुराग पूर्वक भगवान को भजती हैं।

ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्ष
कामास्तप: समचरन् भगवत्प्रपन्ना:।
साश्री: स्ववासमरविन्दवनं विहाय
यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता।।

जिनका कृपा-कटाक्ष प्राप्त करने के लिए ब्रह्मादि देवता भगवान के शरणागत होकर बहुत दिनों तक तपस्या करते रहे, वही लक्ष्मीजी अपने निवास-स्थान कमल-वन का परित्याग करके बड़े प्रेम से जिनके चरण-कमलों की सुभग छत्र-छाया का सेवन करती हैं।

जिनके चरणकमल कमला के करतल से न निकलते देखा।

कोसलेन्द्र पदकञ्जमञ्जुलौ
कोमलापद महेशवन्दितौ।
जानकी करसरोज लालितौ
चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ।।

कोसलपुरी के स्वामी श्रीरामचन्द्र जी के सुन्दर और कोमल दोनों चरण-कमल ब्रह्माजी और शिवजी के द्वारा वन्दित हैं, श्रीजानकी जी के कर कमल कैसे दुलराये हुये हैं और चिन्तन करने वाले के मनरूपी भौंरे के नित्य सङ्गी हैं।

पति अनुकूल सदा रह सीता।
सोभा खानि सुशील विनीता।।
जानति कृपा सिन्धु प्रभुताई।
सेवति चरण-कमल मन लाई।।
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी।
विपुल सदा सेवा विधि गुनी।।
जिनकर गृह परिचर्या करई।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई।।
विधि हरि हर ब्रह्मादि वन्दिता।
जगदम्बा संततमनिन्दिता।।
जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोई।
राम पदारविन्दरति, करति सुभावहिं खाई।।
कर्हिचित् सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम्।
पतिं पर्यचरद् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः।।

(भागवत)

एक दिन समस्त जगत् के परमपिता और ज्ञानदाता भगवान श्रीकृष्ण रुक्मिणी जी के भवन में पलङ्ग पर आराम से बैठे थे। भीष्मक-नन्दिनी श्रीरुक्मिणी जी सखियों के साथ अपने पतिदेव की सेवा कर रहीं थीं। उन्हें पंखा झल रही थीं।

बालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात्।
तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक ईश्वरम्।।

रुक्मिणी जी ने अपनी सखी के हाथ से वह चँवर ले लिया, जिसमें रत्नों की डाँडी लगी थी और परम रूपवती लक्ष्मीरूपिणी देवी रुक्मिणी जी उसे डुला-डुलाकर भवागन की सेवा करने लगीं। यही कारण है कि ईश्वरी होने पर भी श्रीलक्ष्मी जी की भक्तों में भी गणना की जाती है।

श्रीलक्ष्मी जी की भगवन्निष्ठा का उद्घाटन तो उस समय होता है जब अमृत के उद्देश्य से समुद्र-मन्थन किये जाने पर अन्य विविध रत्नों के साथ वह स्वयं प्रकट होती हैं। उस समय देवता, दैत्य, मुनि, मानव सभी ने चाहा कि ये हमको मिल जाँय; परन्तु श्रीलक्ष्मी जी तो चाहती थीं कि मुझे कोई निर्दोष और सर्वगुण सम्पन्न अविनाशी पुरुष मिले तो मैं उसे अपना आश्रय बनाऊँ, वरण करूँ; परन्तु गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध, चारण, देवता आदि में कोई भी वैसा श्रेष्ठ पुरुष उन्हें नहीं मिला। रहे एक भगवान विष्णु। श्रीलक्ष्मी जी ने देखा कि इनमें सभी मङ्गलमय गुणनित्य निवास करते हैं; परन्तु ये तो मुझे चाहते ही नहीं। मेरी ओर पीठ किये समुद्राभिमुख हो उसकी तरङ्गे गिन रहे हैं। तो भी श्रीलक्ष्मी जी ने अपने चिर अभीष्ट भगवान को ही वर के रूप में चुना। तो भगवान ने भी श्रीलक्ष्मी जी की निष्ठा से प्रभावित होकर उन्हें अपने वक्षःस्थल पर ही सर्वदा निवास करने का स्थान दिया।

इस प्रसङ्ग से हमें चह शिक्षा मिलती है कि नहीं चाहने पर भी भजने योग्य भगवान ही हैं तथा सर्वतोभावेन भजने वाले को भगवान अपने हृदय में बसाते हैं।

अस सज्जन मम उर बस कैसे।
लोभी हृदय बसै धन जैसे।।

भगवदुपासना (मानसपूजा)

जगत् में चौरासी लाख प्रकार के शरीरों में मानव शरीर सर्वोत्तम है। यह श्रीभगवान् की कृपा से मिलता है। मनुष्य शरीर के अतिरिक्त सभी शरीर कर्मानुसार कर्म फल भोगने के लिए मिलते हैं।

अन्य शरीरों का प्रधान कारण कर्म है और मनुष्य शरीर प्राप्त होने में प्रधान कारण ईश्वर की कृपा है। समस्त शास्त्रों तथा ऋषियों का यही सिद्धान्त है। भोग का योग सभी योनियों में मिलता है, परन्तु ईश्वर का भोग मनुष्य शरीर से ही सम्भव है। अत: ऋषि वचन है कि **'विचित्रादेहसम्पत्ति-रीश्वराय निवेदितुम्'** मानव शरीर पाकर जो केवल सांसारिक विषयों से ही योग बनाये रहता है, वह पशु के समान माना गया है। प्रभु ने यह शरीर दिया है, अत: स्वस्वरूप ज्ञानपूर्वक ब्रह्म की उपासना अवश्य करनी चाहिए, वे ही जन्म पालन आदि करनेवाले हैं। अत एव उपनिषद् वचन है कि- **'जज्जन्निति शान्त उपासीत्'** अर्थात् परमात्मा से जन्म, पालन तथा संहार काम होते हैं। अत: उनकी पूजा अवश्य करनी चाहिए। श्रीमद्भागवत स्कन्द२ अध्याय ३ में कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना बतलायी गयी है, जिसका फल केवल लौकिक है; परन्तु भगवान् की पूजा के सम्बन्ध में कहा गया है कि जगत् में धन, स्त्री, पुत्र पशु आरोग्य, धर्म आदि की चाह से या मोक्ष की चाह से अथवा किसी चीज की चाह न होने पर भी प्रेमपूर्वक भगवान् की पूजा अवश्य करे।

अकाम: सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधी:।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।।

पूर्ण विश्वास पूर्वक ईश्वर की उपासना अवश्य करे। भगवान् की पूजा के लिए प्रधान आधार मूर्ति है। विश्व कल्याण के लिये वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य आदि विशेष गुणों के कारण व्यापक होते हुए श्रीमन्नारायण भगवान् अर्चा (प्रतिमा) रूप धारण करते हैं। अर्चारूप में भगवान् सर्वदेव, सर्वकाल और सर्वव्यक्ति के लिए सुलभ हो जाते हैं। अत एव पद्मपुराण में अर्चा (प्रतिमा) की सर्वाधिक विशेषता बतलायी गयी है। यथा—

भारतेऽस्मिन् महावर्षे नित्यं सन्निहितो हरि:।
सर्वावस्थासु सौलभ्यमर्चायां विन्दते जनै:।।

(पद्मपुराण)

अर्थात् इस भारत वर्ष में सर्वदा निकट रहते हुए नारायण की अर्चा (प्रतिमा) सुलभता से लोग प्राप्त करते हैं।

जम्बुद्वीपे महापुण्ये वर्षे वै भारते शुभे ।
अर्चायां सन्निधि: विष्णोर्नेतरेषु कदाचन ।।

अर्थ—जम्बुद्वीप के सुन्दर भारतवर्ष में अर्चा (प्रतिमा) में भगवान् विष्णु की सन्निधि रहती है। अर्चा (प्रतिमा) दो प्रकार की होती है स्वयं व्यक्त तथा मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठापित। स्वयं व्यक्त का अर्थ है—मूर्ति (प्रतिमा) रूप में श्रीभगवान् को स्वयं प्रकट हो जाना। अनेक दिव्य देशों में श्रीभगवान् प्रतिमा रूप में प्रकट हो गये। शालग्राम मूर्ति में स्वयं व्यक्त भगवान् सर्वाधिक भक्तों के लिए सुलभ हैं। भगवान् की पूजा के लिए स्वयं व्यक्त भगवान् की मूर्तियों में आवाहन विसर्जन नहीं होता है। मन्त्र द्वारा प्राणप्रतिष्ठा जिन मूर्तियों में की जाती है, वे मूर्तियाँ आठ प्रकार की होती हैं—पाषाण, काष्ठ, धातु, मिट्टी, चन्दनादि की लेपमयी, चित्रमयी, बालूकामयी, मनोमयी और मणिमयी।

पाषाण आदि की बनी मूर्तियों के दो भेद हैं– चल और अचल। अचलमूर्ति में एक ही बार प्राण प्रतिष्ठा हो जाती है। प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन

नहीं किये जाते हैं। चल प्रतिमा के सम्बन्ध में वैकल्पिक व्यवस्था है, आवाहन करे या न करे। बालु की मूर्ति (प्रतिमा) में प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन करना चाहिए। मिट्टी और चन्दन की लेपमयी (फोटो) प्रतिमाओं को स्नान न करावे, केवल मार्जन करे। प्रतिमा पूजन से जब निर्मल अन्त:करण हो जाय तथा भगवान् का स्वरूप हृदय में आ जाय तो उस स्वरूप की उपासना हृदय में भी पूजा की समस्त सामग्रियों से भावनापूर्वक उपासना की जा सकती है। अत एव श्रीव्यासजी ने श्रीमद्भागवत में लिखा है—

'अर्चादौ हृदये चापि यथा लब्धौपचारकैः'।

अर्थात् यथासम्भव पूजन सामग्रियों के द्वारा अर्चामूर्ति में या हृदय में भगवान् की पूजा करे।

'महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयाऽऽत्मनः।'

इस वचन के अनुसार भगवान् की जो मूर्ति (श्रीलक्ष्मी-नारायण, श्रीवेंकटेश, श्रीरङ्गनाथ, श्रीवद्रीनारायण, श्रीवरदराज, श्रीराधाकृष्ण श्रीसीताराम आदि उन्हीं रूपों में) प्रिय लगे। (अभीष्ट हो) उस स्वरूप को हृदय में बैठाकर **'मूलमन्त्रेण चार्चयेत्'** इस उक्ति के अनुसार मूलमन्त्र से पूजन करे।

हृदय में मूर्ति बैठाने का प्रकार

हृदय प्रदेश में प्रथम इस प्रकार चिन्तन करे- भगवान् हमारे हृदय में कमलासन पर बैठे हुए हैं। उनकी चार भूजायें हैं। ऊपर के दायें हाथ में चक्र बायें में शंख और नीचे के दाहिने हाथ में गदा तथा बाये में पद्म धारण किये हुए हैं। उनके कमल के समान विशाल दोनों नेत्र हैं। पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं। भुजाओं में श्रेष्ठ रत्नों के वाजुवन्द शोभायमान है। शिर पर बड़ी ही सुन्दर मुकुट तथा कानों में कुण्डल शोभायमान हो रहे हैं। उनके हृदय पर श्रीवत्स का चिह्न है। गले मैं कौस्तुभमणि अपने अमित शोभाओं के साथ लटक रही है। वक्षस्थल पर वनमाला विराज रही है। वे कमर में करधनी, चरणों में नूपुर, हाथों में कङ्कण आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके शिर पर घुँघराले काले बाल हैं। उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुस्कान से खिल रहा है। उनकी दाहिनी ओर दिव्य आभूषणों से अलंकृत अपूर्व सौन्दर्य की निधि जगन्माता श्रीलक्ष्मी जी चितवन तथा भौंहों के द्वारा भक्तजनों पर अनन्त अनुग्रह की वर्षा कर रही हैं। इसी दिव्य स्वरूप का पूजन करे, जिसका प्रकार निम्नलिखित है—

पूजन की सारी सामग्रियों को क्रमश: मन से समर्पण करते जाय। प्रथम आवाहन की जगह चरणों में मानसिक तुलसी समर्पण करे। मखमल वस्त्र का सिंहासन समर्पण करे। पञ्चकटोरी में सुगन्धित पदार्थों तुलसी फूल, लवङ्ग, इलायची से मिश्रित जल देकर उसे सुगन्धित कर ले और उसमें विरजा नदी के जल की भावना करे तथा उन्हें हाथ में अर्घ्य, पाद्य, आचमन तथा स्नानीय समर्पण करे क्रमश: पीताम्बर वस्त्र, यज्ञोपवीत, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, उत्तम प्रकार के नैवेद्य (मक्खन, मिश्री, लड्डू, पेड़ा सामयिक फल जैसे–सेव, आम, अमरूद, केला, नारंगी इत्यादि) अर्पित करे। नैवेद्य के अन्त में आचमन करावे, उसके पश्चात् मुख शुद्ध्यर्थ लवंग, इलायची युक्त पानसुपारी समर्पण करे। घृतबत्ती से निराजन कर पुन: कर्पूर की आरती करे। इस क्रम में मन से ही मङ्गलाशासन श्लोक का पाठ भी करे। इसके अनन्तर प्रभुपादारविन्दों में केशवादि द्वादश नामों से तुलसी पुष्प समर्पण करे। अन्त में पूजन-विधि में हुई त्रुटि मार्जन हेतु क्षमा प्रार्थना कर दास भाव रखते हुए प्रदक्षिणा करके साष्टाङ्ग प्रणाम करे। ये सारी उपर्युक्त क्रियायें मानसिक ही करे। **'आँव छाँह तर मानस पूजा'** यह मानसकार की पङ्क्ति भी मानस पूजा की ओर ध्यान आकृष्ट कर रही है।

मानस में गुरु-भक्तियोग

शास्त्रकारों ने परमात्मा को प्राप्त करने का अनेक उपाय बतलाया है–कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्ति-योग, प्रपतियोग और आचार्याभिमानयोग। यह सारे कर्म प्रभु तक पहुँचाने का ही उपाय हैं। लेकिन यह बड़ा ही दुरूह्य है। इसलिए हमारे पूर्वाचार्यों ने 'आचार्याभिमान' को ही सरल उपाय बतलाया है। आचार्याभिमान का अभिप्राय है अपने आचार्य पर पूर्ण भरोसा एवं विश्वास।

गुरु जीव को अन्धकार से प्रकाश और असत्य से सत्य की ओर ले जाता है। भगवान् के सम्मुख करके जीव की तरफ से वकालत करता है—

एनं रक्षस्व गोविन्द बहुजन्म अपराधिनम्।

हे प्रभु! जन्म-जन्मान्तर के अपराधी जीव आज आपके शरण में आया है इसकी रक्षा करने की आप कृपा करें। इतना उपकार विश्व में गुरु को छोड़कर और कौन कर सकता है? जिस समय गुरु के माध्यम से जीव भगवान् की शरणागति करता है। उस समय करोड़ों जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है। इसलिए भगवान् ने स्वयं स्वीकार किया—

सन्मुख होई जीव मोही जवही।
जन्म कोटि अघ नासही तबही।।

जब जीव समर्थ गुरु के पास जाता है तब सांसारिक चिन्ता दूर हटने लगती है। अशान्त और उद्विग्नमन को शान्ति मिलने लगती है और आत्म-विचार भी लहरे मारने लगती है।

सच्चा गुरु ही परमात्मा तक जीव को पहुँचाता है। सबरी को मतङ्ग जैसे ऋषि ने स्वीकार कर लिया। वह नीच कुल में जन्म ली थी, कुरूप थी, अपङ्ग थी, लेकिन गुरु के शरण में जाते ही वह पवित्र हो गयी—

सोई पावन सोई सुभग शरीरा।
जेहि तन पाई भजिय रघुवीरा।।

शबरी की भक्ति गुरुकृपा से बढ़ती गई। उसे अपने गुरु के वचन पर विश्वास था। जिस समय मतङ्ग परलोक जाने लगे उस समय शबरी को असह्य कष्ट हुआ; क्योंकि वह गुरु को ईश्वर से भी ज्यादा निष्ठा से पूजा करती थी—

गुरु मूरति मुख चन्द्रमा सेवक नयन चकोर।
अष्ट प्रहर निरखत रहै गुरु चरनन की ओर।।

मतङ्ग ने जाते वक्त कहा कि बेटी चिन्ता मत करो, भगवान् राम तुम्हारे पास आकर दर्शन देंगे। भगवान् श्रीराम ने स्वयं पैदल चलकर शबरी के आश्रम पर पधारे और उसे सही पात्र समझकर नवधा भक्ति का उपदेश किया। समर्थ गुरु ईश्वरीय कोप से शिष्य की सदैव रक्षा करता है—

राखई गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहीं कोउ परित्राता।।

उज्जैन महाकाल मन्दिर में काकर्षि शिव मन्त्र का जप कर रहे थे। गुरु आते हैं, लेकिन शिष्य जप खण्डित न हो इसलिए गुरु को प्रणाम नहीं किया। गुरु इस अपमान से आहत नहीं हुए, लेकिन शिव ने श्राप देना प्रारम्भ कर दिया। भारत का सच्चा गुरु शिव की लम्बी स्तुति कर प्रसन्न करते हैं और वरदान माँगते हैं कि मेरे शिष्य को आप आशीर्वाद देकर नरक जाने से उसकी रक्षा करें। शिव ने प्रसन्न हो काकर्षी को शाप नहीं दिया स्वयं काकर्षि ने स्वीकार किया—

एक शूल मोहि बिसर न काऊ।
गुरुकर कोमल शील स्वभाऊ।।

भगवान् का चरणामृत तीन बार लेने का विधान है और गुरु का दो बार। गुरु गीता में आया है—

सप्त सागरपर्यन्तं तीर्थस्नानफलं तु यत्।
गुरुपादपयोविन्दोः सहस्त्रांशेन तत्फलम्।।

सात समुद्र पर्यन्त में सर्व तीर्थों में स्नान करने से जितना फल मिलता है, वह फल श्रीगुरुदेव के चरणामृत के एक बिन्दु के फल का हजारवाँ हिस्सा है।

राजा दशरथ जी महाराज जैसा चक्रवर्ती सम्राट् अपने जीवन का अनुभव बतलाते हुए कहते हैं कि मैंने जो कुछ प्राप्त किया है वह सब गुरुकृपा से ही प्राप्त किया है—

सब पायउ रज पावनि पूजै।
अत अनुभव मोहि और न दूजै।।

भगवान् नारायण बेटा बन गए, लक्ष्मी पुत्रवधू बनी, श्रीअवध जैसा पावन भूमि पर जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सारे ऐश्वर्य उनके पास था। सदेह देवलोक तक जाते थे, आधा इन्द्रासन उनके लिए सुरक्षित रहता था, प्रजा को पुत्र के समान पालन करते थे, यह सब गुरुकृपा का फल के रूप में उन्होंने स्वीकारा है।

भगवान् श्रीराम लङ्का से लौटते हैं और कौसल्या के चरणों में जाकर गीर जाते हैं, माँ सजल नेत्र से आशीर्वाद देती है और कहती है, बेटा राघव! इधर तुम्हारा कोमल शरीर और उधर राक्षसों का कठोर रूप अथाह बल, तू कैसे रावण, कुम्भकर्ण का वध किया। भगवान् ने बतलाया कि माँ तुम्हारा बेटा राम राक्षसों का वध नहीं किया है। माँ कहती है– बेटा! कौन राक्षसों का संहार किया है? भगवान् ने कहा—

गुरु बशिष्ठ कुल पूज्य हमारे।
इनकी कृपा दनुज रण मारे।।

लङ्का मोह नगरी है वहाँ मेघनाद, कुम्भकर्ण और रावण यही काम, क्रोध और लोभ का द्योतक है। भगवान् कहते हैं कि जब तक गुरु की कृपा नहीं होगी तब तक मोह नगरी के इस महान् शत्रु का वध नहीं किया जा सकता है। इसलिए गुरु की कृपा आवश्यक है। गुरुगीता में कहा गया है—

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः।
धन्या च बसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता।।

जिसके अन्दर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेने वाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है।

इसलिए सन्त कबीर कहते हैं—

तीरथ नहाये एकफल, संत मिले फलचार।
सत्गुरु मिले अनंत फल, कहत कबीर विचार।।

भगवत्पूजन से देवतान्तरों का पूजन

जब अर्जुन ने जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा की, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तुम पूजा की सामग्री तैयार कर आज रात में शङ्कर जी की पूजा करके उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्त करो। पुनः भगवान् ने अर्जुन से कहा तुम शङ्कर जी को कहाँ खोजते फिरोगे, लो मेरे चरणों की पूजा कर लो। अर्जुन ने भगवान् की विधिवत् पुष्पमाला आदि से पूजन करके शयन किया। स्वप्न में अर्जुन ने देखा कि जो माला हमने श्रीकृष्ण के चरणों में चढ़ाई थी, वह शङ्कर जी के सिर पर है और शङ्कर जी प्रसन्न होकर पाशुपतास्त्र दे रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि भगवान् के पूजन से ही सबकी पूजा हो जाती है। भगवान् ने देवतान्तर के पूजन का आदेश देकर भी अपना ही पूजन कराया।

दिव्य देश मुक्ति-नारायण

नमः मुक्तिनाथाय शालग्राम स्वरूपिणे ।
ब्रह्मरुद्रादि सेव्याय श्रीभूमि सहिताय ते ।।

जगत् में हिन्दू राष्ट्र से प्रसिद्ध नेपाल के पश्चिमोत्तर भाग में श्रीमुक्तिक्षेत्र है जो हिमालय का ही एक भाग है। इसका क्षेत्रफल १२ योजन (४८ कोश) कहा गया है। यहाँ भगवान विष्णु शालग्राम शिला रूप में स्वयं व्यक्त हैं।

आरभ्य मुक्ति क्षेत्रं तत्क्षेत्रं द्वादशयोजनम् ।
शालग्राम स्वरूपेण मया यत्र स्थितं स्वयम् ।
स्वभक्तानां विशेषेण परमानन्ददायकम् ।।
(वराहपुराण)

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने प्राणियों की मुक्ति-प्राप्ति के लिए मुक्ति पर्वत के बीच एक यज्ञ किया था। उन्होनें श्रीविष्णु को जल रूप में और शिवजी को अग्नि के रूप में आवाहन कर श्रीविष्णु के लिए जल में और शिव के लिए अग्नि में घी और पायस (खीर) का हवन किया था।

ब्रह्मा के यज्ञ स्थल पर एक मन्दिर है, जिसमें श्रीदेवी और भूदेवी के साथ भगवान् विष्णु शालग्राम स्वरूप में भक्तों को दर्शन दे रहे हैं। वाहन स्वरूप में गरुड़ जी का विग्रह भगवान विष्णु के पास है। भक्तों ने मन्दिर के पास ही श्रीरामानुज स्वामी का एक छोटा विग्रह स्थापित किया है। मन्दिर के तीन तरफ उच्चे पर्वत से झरनों के जल गिर रहे हैं, जिनकी संख्या १०८ है। वे झरने के जल ब्रह्मा से आवाहित श्रीविष्णु स्वरूप ही हैं। वहाँ से कुछ दूर पर अन्दर से अग्नि की ज्वाला निकलती रहती है जो ब्रह्मा द्वारा आहूत शिवजी का स्वरूप मानी गयी है। मुक्ति-नारायण के मन्दिर में दो ब्रह्मचारिणी महिलायें ही भगवान की सेवा करती हैं। उन्हें भगवत सेवा के योग्य प्रशिक्षण दिया जाता है। किसी कारण वश आचरण से गिर जाने पर वे पूजा से वंचित कर दी जाती हैं। भारतवर्ष में १०८ दिव्य देश हैं जिनमें मुक्तिनारायण प्रसिद्ध दिव्य देश है। यह दिव्य क्षेत्र देश विभाजित होने पर नेपाल में पड़ गया है। मुक्तिनारायण को ही शालग्राम क्षेत्र कहते हैं। प्रायः सभी पुराणों में शालग्राम क्षेत्र की विशेष महिमा बतलायी गयी है। दक्षिण भारत के आलवार सन्तों ने मुक्त कण्ठ से शालग्राम का मंगलाशासन किया है। आलवारों ने अपने मन से कहा है कि हे मन! अव शालग्राम दिव्य क्षेत्र पहुँचों। भगवान श्रीराम एवं भगवान् श्रीकृष्ण ही शालग्राम रूप में विराजमान हैं। मुक्तिनारायण मन्दिर से चौदह किलोमीटर की दूरी पर दामोदर कुण्ड है। वहाँ विशेष बर्फ के कारण अधिक शीतलता रहती है। उसी के पास से गण्डकी की धारा प्रवाहित होती है जिसमें श्रीविष्णु के विभिन्न अवतार स्वरूप चिह्नों से युक्त भगवान शालग्राम प्रकट होते हैं।

गण्डकी एवं शालग्राम भगवान

एक बार लोक कल्याणार्थ भगवान विष्णु हिमालय में तप कर रहे थे। उस समय विशेष तेजपुञ्ज प्रकट हुआ। उसकी गर्मी से भगवान विष्णु के गण्डस्थल (कपोल) से पसीना निकलने लगा और एक नदी का रूप धारण कर लिया। भगवान के गण्डस्थल से प्रकट होने के कारण वह गण्डकी के नाम से प्रसिद्ध हुई। अत एव श्रीशिवजी ने भगवान विष्णु से कहा कि आपके गण्डस्थल से उत्पन्न श्रम बिन्दु से हुयी मुक्ति धारा सभी नदियों में श्रेष्ठ है। यह मुक्ति क्षेत्र नाम से प्रसिद्ध होकर मुक्तिदायक महान तीर्थ होगा। इसी गण्डकी के गर्भ में आप शिला रूप में विराजमान होंगे

मुक्तिक्षेत्रमिदं देव दर्शनादेव मुक्तिदम्।
गण्डस्वेदोद्भवा यत्र गण्डकी सरितां वरा।।
(वराहपुराण)

गण्डकी की अधिष्ठातृ देवी ने दस हजार वर्ष तक तप करके भगवान विष्णु को प्रसन्न किया और उनसे बरदान माँगा कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे गर्भ में निवास करके मेरे पुत्र रूप में प्रकट हों।

यदि देव प्रसन्नोऽसि देयां मे वाञ्छितो वरः।
मम गर्भगतो भूत्वा विष्णो मत्पुत्रतां व्रज।।

(वराहपुराण)

गण्डकी के वचन से सन्तुष्ट भगवान विष्णु ने कहा कि देवि! भक्तों के कल्याणार्थ शालग्राम शिला रूप में तुम्हारे जल रूप गर्भ में वास करूँगा। मेरे सान्निध्य होने के कारण तुम सभी नदियों में श्रेष्ठ मानी जाओगी।

शालग्राम शिलारूपो तव गर्भगतः सदा।
स्थास्यामि तव पुत्रत्वं भक्तानुग्रह कारणात्।।

(वाराहपुराण)

स्कन्दपुराण के अनुसार वृन्दा के शापवश भगवान शालग्राम शिला स्वरूप हुए हैं। जलन्धर नाम का एक राक्षस था। वह देवों, ऋषियों और धर्म मार्ग पर चलने वाले सज्जनों को विशेष कष्ट देता था। वह पार्वती के सौन्दर्य पर मोहित होकर उन्हें भी अधिकार में करने का प्रयास करने लगा। श्रीशंकरजी ने जलन्धर का वध करने के लिए सारी शक्ति लगा दी। जलन्धर की पत्नी वृन्दा पतिव्रता थी। उसके सतीत्व के प्रभाव से जलन्धर अजेय हो रहा था। सब देवों ने मिलकर जलन्धर वध के लिए भगवान विष्णु से प्रार्थना की भगवान ने विचार किया कि वृन्दा के पातिव्रत्य धर्म से जगत् को विशेष हानि हो रही है। अतः जगत् कल्याण रूप विशेष धर्म को बचाने के लिए वृन्दा के सतीत्व रूप सामान्य धर्म का हनन करना होगा। एतदर्थ भगवान विष्णु ने छल से वृन्दा का पातिव्रत्य नष्ट किया। तदनन्तर जलन्धर मारा गया।

जब वृन्दा को यह बात ज्ञात हो गयी कि विष्णु ने छल से मेरा पातिव्रत्य धर्म नष्ट किया है तब उसने भगवान विष्णु को शाप दिया कि आप का हृदय पत्थर के समान कठोर है। अतः आप पत्थर बन जायँ। भगवान कुछ क्षण विचार कर गण्डकी में स्नान के लिए गये। वहाँ उन्होंने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा कि तुम वज्र कीट बनकर गण्डकी के स्वर्णमय उनके पाषाणों में मेरे जितने अवतार हुए है, उनके बोधक शालग्राम स्वरूप मूर्तियों को तैयार कर दो। भगवान की आज्ञा से विश्वकर्मा वज्रकीट नाम का कीड़ा बन गये और गण्डकी में हजारों वर्ष तक रहकर स्वर्णमय शिलाओं में अनेक चक्रादि चिह्नों से युक्त शालग्राम स्वरूप मूर्तियों को तैयार कर दिये। वृन्दा के शाप को कारण बनाकर सर्वेश्वर भगवान विष्णु जगत् कल्याणार्थ गण्डकी नदी के अमृतमय जल में शालग्राम शिलास्वरूप में स्थित हो गये।

विष्णुर्बभूव तस्यां वै शालग्राम शिलातनुः।
सर्वलोकहितार्थाय तस्याः शापेन निश्चितम्।।

(स्कन्दपुराण)

शालग्राम शिला में चिह्नों के अनुसार भगवान के विभिन्न अवतार स्वरूपों का बोध होता है। कमलाकार शिला के भीतर चार चक्र एवं बाहर वनमाला चिह्न होने पर श्रीलक्ष्मीनारायण स्वरूप शालग्राम माने जाते हैं। बाण चिह्न वाले श्रीराम परशुचिह्न वाले पशुराम, हल चिह्नवाले बलराम, दक्षिण भाग में गोल वनमाला से चिह्नित श्याम वर्ण श्रीकृष्ण अवतार स्वरूप शालग्राम होते हैं। इस प्रकार भगवान विष्णु के सभी अवतारों के चिह्न शालग्राम भगवान में दृष्टिगोचर होते हैं। ज्ञानी भक्त अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार शालग्राम शिला स्वरूप भगवान के सभी स्वरूपों का पूजन करते आये हैं। शालग्राम शिला में भगवान के सभी स्वरूपों का पूजन होता है। गण्डकी ही शालग्राम भगवान का अवतार स्थल है। भगवान नारायण

शालग्राम रूप में गण्डकी से प्रकट हुए हैं इसलिए गण्डकी को नारायणी भी करते हैं । यह कृष्णा नाम से भी प्रसिद्ध है। नदियों में उत्तम नदी गण्डकी नेपाल राज्य से बहती हुई बिहार राज्य में भागीरथी गंगा में हरिक्षेत्र के पास मिलती है। अत एव उस गण्डकी से सम्बद्ध क्षेत्र महाफलदायी पुण्यतम हरिक्षेत्र कहलाता है।

उपासना के लिए सुलभ शालग्राम

माया से सम्बन्धित एक भी बद्ध जीव चाहे किसी भी शरीर में हो सर्वविध भौतिक सम्पन्नता के बाद भी विकार रहित और सुखी नहीं है। सुखी बनने का आध्यात्मिक साधन मानव को सुलभ है। वह है सर्वेश्वर भगवान नारायण की उपासना। भगवान के पाँच रूप हैं। पर, व्यूह, वैभव, अन्तर्यामी और अर्चा। उपासना के लिए भगवान ने सौलभ्य गुण के कारण अर्चास्वरूप धारण किया है। अर्चा मूर्ति दो प्रकार की होती है स्वयं व्यक्त और प्रतिष्ठित। पाषाणादि विग्रह के रूप में भगवान स्वयं प्रकट हो जाते हैं। श्रीरंगनाथ, श्रीवेङ्कटेश, श्रीबद्रीनाथ, जगन्नाथ, मुक्तिनाथ, तथा शालग्राम आदि शिला रूप में भगवान स्वयं व्यक्त अर्चारूप हैं। दूसरी शास्त्र वर्णित भगवद् विग्रह में विधिवत् मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति होती है।

स्वयं व्यक्त मूर्तियों में शालग्राम मूर्ति सबके लिए सुलभ हैं। शालग्राम मूर्ति में भगवान को स्वयं व्यक्त होने के कारण प्रतिष्ठा सम्बन्धी संस्कार करने की आवश्यकता नहीं होती है। उनकी पूजा में मन्त्र और विधि की भी आवश्यकता नहीं है। प्रेमपूर्वक उनका नाम लेकर पञ्चोपचार अथवा षोडषोपचार से पूजन कर ले। जो सात्त्विक भोजन घर में तैयार हो उसे तुलसीपत्र डालकर भगवान शालग्राम को समर्पण कर दे। अन्य अर्चामूर्ति को तीन दिनों तक भोग न लगने पर उनमें देवत्व नहीं रहता है, परन्तु शालग्राम भगवान में ऐसी बात नहीं है। कुछ दिनों तक पूजा अथवा भोग बन्द हो जाने पर भी शालग्राम भगवान में देवत्व रहता ही है। अन्य अर्चामूर्ति का कोई अङ्ग टूट जाने पर उनका पूजन निषिद्ध है क्योंकि उनसे देवत्व निकल जाता है, परन्तु शालग्राम भगवान के फूटकर खण्ड-खण्ड हो जाने पर भी देवत्व रहता ही है और उनकी पूजा ठीक मानी जाती है।

खण्डितं स्फुटितं भग्नं पार्श्वभिन्नं विभेदितम्।
शालग्रामशिलाभूतं शैलदोषो भवेन्न हि।।

सन्तान उत्पत्ति का छूतक अथवा मृतक के छूतक होने पर भी शालग्राम मूर्ति का पूजन बन्द न करे। अशौच समाप्त होने पर शालग्राम भगवान का पञ्चामृत में स्नान करा लें और वस्त्र तथा यज्ञोपवित बदल दें।

सूतके मृतके वाऽपि विष्णुं नित्यं तथार्चयेत्।
शालग्राम शिला स्पृष्ट्वा सद्य एव शुचिर्भवेत्।।

(पराशरस्मृति, नारायणसारसंग्रह)

जिस घर में शालग्राम भगवान का पूजन होता है, वहाँ किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता है तथा पूजन करने वाला लोक एवं परलोक का सुख प्राप्त करता है। उस घर के निकट में रहने वाले पशु, पक्षी आदि कल्याण के भाजन होते हैं। शालग्राम पूजन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा सद्शूद्रों को भी अधिकार है। नारियों के लिए विशेष रूप से गोपाल भगवान का ही पूजन बतलाया गया है; परन्तु श्रीवैष्णवी नारी शालग्राम भगवान का पूजन कर सकती है।

असच्छूद्रगतं दासः निषेधं विद्धि मानद ।
स्त्रीणामपि च साध्वीनां नैवाभावः प्रकीर्तितः ।।

(स्क०पु० ब्रह्म खण्ड ११अध्याय २८श्लोक)

स्त्रियो वा यदि वा शूद्रो ब्राह्मणः क्षत्रियादयः।
पूजयित्वा शिलाचक्रं लभन्ते शाश्वतं पदम् ।।

जोड़ा शालग्राम का पूजन विधेय है; परन्तु

जोड़ा में दो का पूजन नहीं करें और विषम में एक का पूजन उत्तम है।

शालग्रामाः समाः पूज्या विषमा न कदाचन ।
समेषु न द्वयं पूज्यं विषमेष्वेकमेव हि ।।

चरणोदक की अपूर्व महिमा

अकाल मृत्यु हरणं सर्वव्याधि विनाशनम् ।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।

भगवान शालग्राम का चरणोदक प्रतिदिन पान करें। उससे समस्त पाप नष्ट होते हैं और भगवान की सायुज्यमुक्ति प्राप्त होती है। संसार मल रूप कीचड़ को भगवान के चरणोदक ही नाश करता है। महान् पापी भी भगवान शालग्राम के चरणोदक पीकर शुद्ध हो जाता है। भगवान् के चरणोदक लेते समय ध्यान दें कि एक बून्द भी भूमि पर न गिरे; क्योंकि भूमि पर गिरने से महान पाप होता है। उससे हजारों वर्ष तक जीव को नरक वास करना पड़ता है। अतः चरणोदक (तीर्थ) लेने की विधि है कि वायें हाथ पर दोहरा कर वस्त्र रख लें और उस पर दायाँ हाथ रखकर उसमें चरणोदक लेकर पी जाय। चरणोदक (तीर्थ) तीन बार लेना चाहिए।

वस्त्रं द्विगुणीकृत्य पाणौ पाणि निवेशयेत्।
तस्मिन्तीर्थं प्रतिष्ठाप्य त्रिपिवेद् विन्दुवर्जितम्।।

महान् पापी के मुख में भी यदि मरते समय भगवान शालग्राम का चरणोदक (तीर्थ) प्रवेश कर जाय तो उसे मुक्ति मिल जाती है।

प्राचीन काल में मगध देश में शबर नाम का एक महान पापी था। वह तीर्थ यात्रियों के धन, वस्त्र आदि लूटने तथा प्राणियों की हिंसा में सदा रत रहता था। एक दिन उसकी आयु पूरी होने पर यमराज के दूत उसे ले जाने के लिए आ गये। एक यमदूत ने सर्प बनकर उसे डस लिया। उससे उसकी मृत्यु हो गई। उसी समय एक श्रीवैष्णव भक्त वहाँ आ गये। उन्होंने दयावश तुलसी युक्त शालग्राम भगवान का चरणामृत मृत पापी के मुख में डाल दिया और शालग्राम भगवान को उसकी छाती पर रखकर उसके कल्याणार्थ भगवान से प्रार्थना की। यमदूत यह समझकर वहाँ से हट गये कि यह विष्णुलोक में जाने योग्य बन गया। तदनन्तर विष्णु दूत वहाँ आये और उस मृत व्यक्ति की आत्मा को विमान में बैठाकर वैकुण्ठ ले गये। अतः किसी व्यक्ति को मरणासन्न होने पर उसके पास तुलसी तथा शालग्राम भगवान को रखे और उसे चरणोदक (तीर्थ) पिला दें। उत्तर में वद्रीनारायण से दक्षिण भारत के अंतिम सीमा तक तथा पूर्व में जगन्नाथपुरी से पश्चिम में द्वारिका पुरी तक भारत के सभी मन्दिरों में भगवान शालग्राम का ही चराणोदक भक्तों को मिलता है।

शीघ्र विवह हेतु

देवेन्द्राणि नमस्तुभ्यं देवेन्द्रप्रियभामिनि ।
विवाहं भाग्यमारोग्यं शीघ्र लाभं च देहि मे ।।

जपविधि—इस मन्त्र को प्रतिदिन स्नान के बाद तुलसी के समीप बैठकर १०८ बार जपना चाहिए । जप के बाद किसी बर्तन में एक पाव गाय का दूध लेकर दाहिने हाथ में रखे तथा बायें हाथ में एक पाव पानी रखे, दोनों को लिये हुए तुलसी की प्रदक्षिणा करे । प्रदक्षिणा के समय ऊपर लिखा मन्त्र पढ़ते रहे । परिक्रमा पूरी होने पर दोनों हाथों के दूध एवं पानी से एक बार सूर्य को अर्घ्य देवे । इस तरह १२ बार करना चाहिए । इक्कीस दिनों तक यह विधि करने पर कन्या का विवाह शीघ्र होता है ।

रामायणं वेद सम्मम्

वेद के अन्तिम भाग को वेदान्त कहते हैं, जो उपनिषद् नाम से प्रसिद्ध है। वेदान्त ही ब्रह्मतत्त्व के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करता है। वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म ही ऋषि मुनियों एवं देवों की आर्त्त पुकार पर वैदिक धर्म की रक्षा एवं विश्व, राष्ट्र तथा समाज में अशान्ति फैलाने वाले दुष्टों के संहार के लिए भूतल पर अवतरित होते हैं। जब वह परमात्मा अवध में कौसल्या के गर्म से दशरथ के पुत्र रूप में प्रकट हुए, तब उनके दिव्य गुणों एवं रूपों का वर्णन करने वाला वेद भी वाल्मीकि के मुखारविन्द से रामायण के रूप में प्रकट हो गया। वाल्मीकि तमसा नदी में स्नान के लिए गये थे। उसके तट पर युगल कौञ्च पक्षी (नर-मादा) कामासक्त थे। एक व्याधा अपने बाण से उनमें नर पक्षी का बध कर दिया। अपने पति को उस अवस्था में देखकर मादा करुण क्रन्दन करने लगी। परम दयालु वाल्मीकि की दृष्टि उस पक्षी पर पड़ी। मादा को देखकर उनके मुख से शापरूप में सहसा एक श्लोक निकला—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत् क्रोञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

अर्थात् तुमने काम मोहित क्रोञ्च पक्षी के जोड़े में से एक नर पक्षी का बध कर दिया है।

महामुनि वाल्मीकि उसका चिन्तन करते हुए अपने आश्रम पर लौट गये। उसी समय लोक स्रष्टा ब्रह्मा वाल्मीकि से मिलने के लिए उनके आश्रम में आये। वाल्मीकि ने उनका समुचित सत्कार किया। तमसा के तटपर जो घटना घटी थी, वह वाल्मीकि को विस्मृत नहीं हो रही थी। वे बार-बार उसी का चिन्तन कर रहे थे। ब्रह्मा ने उनके मनोभाव को समझकर कहा कि मेरी प्रेरणा से ही तुम्हारे मुख से अनुष्टुप छन्दोवद्ध श्लोक निकला है।

मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृतेयं सरस्वती।

तुम इसी छन्द में भगवान् श्रीराम का चरित्र चित्रण करो। तुम्हें श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और राक्षसों के जो गुप्त या प्रकट चरित्र अज्ञात होंगे, वे सब लिखते समय ज्ञात हो जायेंगे। तुम्हारे काव्य में एक अक्षर भी असत्य नहीं होगा। इस पृथ्वी पर जब तक नदियों तथा पर्वतों की सत्ता रहेगी तब तक इस संसार में श्रीराम कथा का प्रचार होता रहेगा। ब्रह्माजी वाल्मीकि को ऐसा वरदान देकर चले गये। वाल्मीकि स्नान करके पूर्वाग्र कुशासन पर बैठकर समाधिस्थ हो गए। उस समय श्रीराम, लक्ष्मण आदि के प्रकट तथा गोपनीय चरित्र भी वाल्मीकि के लिए प्रत्यक्षवत् हो गये। उसके अनुसार श्रीरामतत्त्व के प्रत्यक्ष द्रष्टा महामुनि वाल्मीकि ने सात काण्ड, पाँच सौ सर्ग और चौबीस हजार श्लोकों में श्रीराम का चरित्र लिखा।

गायत्री में चौबीस अक्षर होते हैं। उनके एक-एक अक्षर से आरम्भ कर एक-एक हजार श्लोक का निर्माण किया। भगवान् की कृपा से सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ था और ब्रह्मा के अनुग्रह से वह वेद वाल्मीकि के मुखारविन्द से रामायण के रूप में अवतरित हुआ।

वेदवेद्य परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना।।

"अत एव स्कन्द पुराण के उत्तरखण्ड में व्यासजी ने रामायण को वेद सम्मत कहा है।

रामायणं महाकाव्यं सर्व वेदेषु सम्मतम्।

नारायण के द्वारा ब्रह्मा के हृदय में समस्त वेदों का ज्ञान कराने के कारण श्रीमद्भागवत के प्रथम श्लोक से ब्रह्मा आदि कवि कहे गये हैं।

तेने ब्रह्म हृदाय आदि कवये।

ब्रह्मा की प्रेरणा से प्रथम छन्दोवद्ध रामायण लिखने के कारण वाल्मीकि लोक में आदि कवि के नाम से प्रसिद्ध हुए। वेदों में रामचरित्र सूत्र में हैं—

'अर्वाची सुभगेभव सीते'। 'वन्दामहे त्वा'।

(ऋग्वेद-३-२-९)

'अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विष्ये शखे हन्तः'।

(ऋग्वेद १२-२१-६)

रामायण में श्रीराम चरित्र विस्तारपूर्वक लिखा गया है। इसलिए वेदार्थ को यथार्थ स्वरूप में समझने के लिए रामायण का सहयोग लेना आवश्यक हो जाता है।

रामायण का पाठ करने तथा सुनने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। जो जिस फल की इच्छा से सुनता है उसे वह फल अवश्य प्राप्त होता है।

धर्मार्थ काममोक्षाणां साधनं च द्विजोत्तमाः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या रामायण परामृतम्।।

महान् पापी का भी कल्याण करने की पूर्ण सामर्थ्य रामायण में है।

कलियुग में एक कलिक नाम का व्याध था, वर पर नारी और पराये धन के अपहरण में लगा रहता था। उसके लिए उसने अनेक हत्यायें भी की थी। सौबीर नगर के उपवन में केशव भगवान का विशाल मंदिर था। उसके शिखर पर अनेक स्वर्ण कलश थे। कलश के लोभ से व्याध उस मंदिर में गया। शिखर पर चढ़कर कलश उतारने की भावना उसमें हो गई। अचानक उस मंदिर में भजन करने वाले उतंक मुनि पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह व्याध सोचा कि यह महात्मा मेरे कार्य में बाधक है। अत: इसे मार डालूँ। व्याध मुनि की छाती पर एक पैर रखकर दबाया और एक हाथ में तलवार लेकर उनके गला काटने के लिए तैयार हो गया। महात्मा भगवान् का स्मरण करते हुए यह कहने लगे कि मनुष्य दूसरे का धन अपहरण करके जो अपनी स्त्री आदि का पोषण करता है, वह गलत करता है, क्योंकि वह अन्त में उन सब को छोड़कर अकेला ही परलोक चला जाता है। मनुष्य जब तक कमाकर धन देता है तभी तक उसके पुत्र, भाई, बन्धु प्रेम करते है। जब उसे पाप कर्म का फल रूप दुखों को भोगने का समय आता है तो वह अकेला ही भोगता है। महात्मा उतंक के वचनों को सुनकर कलिक व्याध भय से व्याकुल हो उठा और उनके पास से दूर हट गया तथा उन्हीं की ओर हाथ जोड़कर बार-बार कहने लगा कि हे मुने! मेरे अपराध को क्षमा करें। पुन: उसने महात्मा से पूछा कि मैंने जीवन भर पाप किया है। उन पापों से छुटकारा कैसे पा सकूँगा?

महात्मा उतंक ने कहा कि व्याध तुम भक्ति भाव से आदर पूर्वक रामायण की कथा सुनो उसके श्रवण मात्र से तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो जायेंगे। कलिक ने उतंक मुनि से नव दिन रामायण की कथा श्रवण किया, जिससे वह शीघ्र पापमुक्त हो गया। इस प्रकार रामायण कथा का अपूर्व प्रभाव देखा गया। सनातन धर्म पालन एवं सदाचार की विशेष शिक्षा हमें रामायण से मिलती है। अत: सभी लोगों को रामायण से प्रेम करना चाहिए।

धन प्राप्ति मन्त्र

अश्वदायि य गोदायि धनदायि महाधने ।
धनं मे लभतां देवी सर्वकामांश्च देहि मे ।।

इस मन्त्र को प्रतिदिन स्नान के बाद कमलाक्ष की माला पर १०८ बार जप करे। इस मन्त्र को सविधि पूर्वक जप करने से धन की प्राप्ति होती है।

श्रीरामानुजाचार्य जी का जीवन वृत्त एवम् उनका दार्शनिक विचार

मद्रास से चौदह कोस दक्षिण-पश्चिम के कोण पर महाभूतपुरी नाम से प्रसिद्ध एक नगर है। जहाँ हारीत गौत्रीय श्री केशवाचार्य नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी का नाम कान्तिमती था।

पार्थसारथि भगवान की आराधना से कान्तिमती के गर्भ से १०१७ खृष्टाब्द के पिङ्गल सम्वत्सर वैशाख मास शुक्ल पक्ष पंचमी तिथि वृहस्पतिवार कर्क लग्न में एक बालक का जन्म हुआ, जिनका नाम ज्योतिषियों ने रामानुज रखा। वैकुण्ठनाथ के शय्या स्वरूप श्रीशेषजी प्रथम बार द्वापर में श्रीबलदेवरूप में आये थे। वे ही कलियुग में श्रीरामानुज के रूप में प्रकट हुए।

प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयोलक्ष्मणस्तथा ।
तृतीयोबलरामश्च कलो रामानुजो मुनिः ।।
द्वापरान्ते कलेरादौ पाखण्डप्रचूरेजने ।
रामानुजेति भविता विष्णुधर्मप्रवर्तकः ।।

(वृ०ब्र०सं०)

श्रीकेशवाचार्य ने उन्हें विधिपूर्वक सभी जात-कर्मादिसंस्कार कराया। जैसे श्रीलक्ष्मण जी का बाल्यकाल से ही श्रीराम के चरणों में निर्मल प्रेम था वैसे ही शेषावतार श्रीरामानुजाचार्य जी का भी बाल्यकाल से ही भगवान एवं भागवतों में पूर्ण निष्ठा थी। श्रीकेशवाचर्य ने सोलह वर्ष की अवस्था में उन्हें विवाह कर दिया। कुछ ही काल के बाद श्रीकेशवाचार्य जी का शरीरान्त हो गया।

ब्रह्म, जीव और माया के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान वेदान्तशास्त्र से प्राप्त होता है। श्रीरामानुजाचार्य शेषावतार होने के कारण सभी ज्ञान से परिपूर्ण थे फिर भी लोक शिक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मण की तरह वे भी वेदान्त अध्ययन के लिए श्रीकाञ्ची आये और वहाँ श्री यादवप्रकाश से वेदान्त पढ़ने लगे। श्रीयादव-प्रकाश श्रीरामानुजजी को मेधावी छात्र समझकर उनसे बहुत प्रेम करते थे। वे कट्टर अद्वैतवादी थे। एक दिन श्रीयादवप्रकाश ने अपने प्रियतमशिष्य श्रीरामानुज को तेल लगाने के लिए कहा। श्रीरामानुज जी यादवप्रकाश को तेल लगाने लगे। उसी समय एक छात्र पढ़ने के लिए आया। श्रीयादवप्रकाश उस छात्र को छान्दोग्योपनिषद् पढाने लगे। उस उपनिषद् के ''तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी'' इस मन्त्र में कप्यासं शब्द आया है। यादवप्रकाश जिसका अर्थ वानर के अपान भाग किया। वह पूरे मन्त्र का अर्थ बताया कि उस सुवर्ण वर्ण के समान पुरुष की दोनों आँखे वानर के अपान भाग के समान है, यह व्याख्या सुनकर तेल लगाते हुए श्रीरामानुज की आँखों से अश्रु धारा गिरने लगी। अश्रु का वह गरम जल यादवप्रकाश के पैर पर गिरा। उस गरम जल से यादव प्रकाश को अनुभव हुआ कि श्रीरामानुज की आँखों से निकला हुआ जल मेरे पैर पर गिरा है। अत: उसने श्रीरामानुजजी से पूछा कि तुम्हारे आँखों से अश्रु क्यों गिर रहा है!

श्रीरामानुजजी ने उत्तर दिया कि आपने ''कप्यासं'' का अर्थ वानर के अपान भाग करके भगवान के नेत्रों को उससे उपमानित किया। इससे मैं बड़ा मर्माहत हुआ हूँ। क्योंकि सच्चिदानन्दमय भगवान की आँखों को वानर के अपान भाग से उपमानित करना महान अन्याय है। यादवप्रकाश ने श्रीरामानुज से कहा कि तुम इससे भिन्न तथा सुन्दर अर्थ कर सकते हो, तब स्वामी रामानुजाचार्य जी ने कहा कि आपके आशीर्वाद हो तो मैं करुँ! यादवप्रकाश की अनुमति मिल गयी। श्रीरामानुज स्वामी ने 'कप्यासम्' का अर्थ किया कि क=जल,

उसको पीने पाला सूर्य, अर्थात् जो अपने किरणों द्वारा जल को पीता है, उस सूर्य से विकसित होने वाला कमल कप्यास का अर्थ है। अत: पूरा मन्त्र का अर्थ हुआ कि उस सुवर्णवर्ण पुरुष की आँखे सूर्य से विकसित होने वाला कमल के समान सुशोभित हैं।

यादवप्रकाश ने श्रीरामानुज जी के अर्थ से प्रसन्नता प्रकट नहीं की। उस दिन से उन पर यादव-प्रकाश का प्रेम कम गया। पुन: एक दिन तैत्तीरीयोपनिषद् के ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' इस मंत्र को जब यादवप्रकाश ने ब्रह्म को असत्यव्यावृत, ज्ञानव्यावृत्त और परिच्छिन्नव्यावृत्त कहकर व्याख्या की तब श्रीरामानुजजी यादवप्रकाश का प्रतिवाद करने के लिए उद्यत हुए और उन्होंने कहा कि ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है। अर्थात् सत्यत्व, ज्ञानत्व और अनन्तत्व ये सब भगवान के गुण हैं।

श्रीरामानुजाचर्य की इस व्याख्या से यादवप्रकाश को विशेष भय हो गया कि यह अद्वैतमत का खण्डन कर द्वैतमत को स्थापित करेगा। अत: यादवप्रकाश ने श्रीरामानुजाचार्य को द्वेष दृष्टि से देखते हुए, उन्हें मरवाने का षड्यन्त्र रचा। एतदर्थ श्रीरामानुजाचार्य को ऐसी जगह ले गया, जहाँ उन्हें बचना सम्भव नहीं था; परन्तु भक्त की रक्षा भगवान् करते हैं इसलिए भगवान् वरदराज श्रीलक्ष्मी के साथ व्याध दम्पति का रूप धारण कर श्रीरामानुजाचार्य को बचा लिए। वे भगवत्कृपा से सकुशल काञ्चीपुरी में लौट गये। उस दिन से श्रीरामानुज जी को श्रीवरदराज भगवान् की सेवा में विशेष निष्ठा हो गयी। श्रीरामानुजाचार्य अपने घर पर ही अध्ययन करने लगे। उन्होंने यादवप्रकाश के द्वारा हत्या के लिए किये गये षडयन्त्र की किसी से चर्चा नहीं की। यादवप्रकाश श्रीरामानुज की नम्रता और सुशीलता को देखकर मन ही मन लज्जित हुए और उन्होंने उससे कहा कि आज से तुम हमारे यहाँ आकर पढ़ा करो। अत: श्रीरामानुजाचार्य पुन: यादवप्रकाश के यहाँ जाकर पढ़ने लगे।

राजकुमारी को प्रेतत्व निवृत्ति

यादवप्रकाश भूत-प्रेत ग्रस्त मनुष्यों को मन्त्र बल से स्वस्थ कर दिया करते थे। उनकी यह प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई थी।

एक समय श्रीकाञ्चीपुर की राजकुमारी भूत से पीड़ित हुई। चारों ओर से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मन्त्र शास्त्री निमन्त्रित किये जाने लगे; परन्तु कोई भी राजकुमारी को निरोग न कर सका। अनन्तर वेदान्ताचार्य यादवप्रकाश बुलाये गये। भूत-ग्रस्त राजकुमारी यावदप्रकाश को देखते ही बड़े जोर से हँसी और बोली कि 'तुम्हारे मन्त्र-तन्त्र से यहाँ कोई फल होने वाला नहीं है। तुम क्यों व्यर्थ कष्ट उठाते हो, घर लौट जाओ'? उसकी बातों पर ध्यान न देकर यादवप्रकाश एक पहर तक मन्त्रोच्चारण करते रहे; परन्तु इससे कुछ फल नहीं हुआ। तब भूत ने कहा क्यों कष्ट उठाते हो। तुम हमसे भी अधम हो, अत: तुम हमको यहाँ से हटा नहीं सकते। यदि तुम यह चाहते हो कि मैं इस कोमलाङ्गी राजकुमारी को छोड़कर हट जाऊँ तो तुम्हारे शिष्यों में जो सबसे कम अवस्था का आजानुबाहु तथा महान प्रतिभाशाली श्रीमान् रामानुज हैं, उसे यहाँ बुलाओ। मेघाच्छन्न अमावस्या की रात्रि का घोर अन्धकार जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार उस महानुभाव के दर्शन से मैं हट जाऊँगा।

यादवप्रकाश ने उसी समय श्रीरामानुज को वहाँ बुलवाया। भूत को राजकुमारी के शरीर से हट जाने के लिए उनके द्वारा कहे जाने पर उस भूत ने कहा आप कृपा करके मेरे सिर पर अपना चरण रखिये, मैं चला जाऊँगा। आप इस दास की अभिलाषा को पूर्ण करें। गुरु की आज्ञा से श्रीरामानुज ने राजकुमारी के सिर पर पैर रखा और कहा कि

राजकुमारी को छोड़ दो और तुमने राजकुमारी को छोड़ दिया है, इसका भी प्रमाण देते जाओ। भूत ने कहा यह मैं छोड़ता हूँ, इसके प्रमाण में सामने पीपल के वृक्ष की शाखा को मैं तोड़ता हूँ। देखते-देखते पीपल की एक शाखा टूट गई और राजकुमारी निद्रा से उठी हुई के समान चारों ओर देखने लगी।

इस अद्भुत कार्य से श्रीरामानुजाचार्य जी का सर्वत्र सुयश फैल गया। इस घटना के पश्चात् यादवप्रकाश अध्यापन कार्य करने लगे। एक दिन ***'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'*** (छान्दो०) और ***'नेह नानास्ति किञ्चन'*** (कठो०) इन दोनों मन्त्रांशों की व्याख्या के समय यादवप्रकाश ने अति सुन्दर रूप से आत्मा और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित की।

उनकी व्याख्या सुनकर श्रीरामानुज के अतिरिक्त और सभी शिष्य प्रसन्न हुए। पाठ समाप्त होने पर श्रीरामानुज ने दोनों मन्त्रांशों के विषय में अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकाशित की। ''सर्व खल्विदं ब्रह्म'' इसका अर्थ निखिल जगत् ब्रह्मस्वरूप है। यदि ऐसा न होता तो उसका ''तज्जलान:'' विशेषण न होता। यह जगत् ब्रह्म से उत्पन्न है, ब्रह्म द्वारा जीवित है और अन्त में ब्रह्म में ही लीन हो जाता है इसी कारण इसे ब्रह्ममय कहा जाता है। मछली जल से उत्पन्न होती है, जल के ही द्वारा जीवित रहती है और जल में ही लय होती है, परन्तु वह कभी जल नहीं हो सकती। इसी प्रकार जगत् कभी ब्रह्म नहीं हो सकता। ''नेहनानास्ति किञ्चन'' इसका अर्थ एक से अतिरिक्त अन्य वस्तु नहीं है ऐसा नहीं है, किन्तु इसका अर्थ यह है कि संसार में वस्तु समूह पृथक्-पृथक् नहीं हैं। जिस प्रकार एक सूत में कई मोती मिलकर एक माला हो जाती है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न वस्तुएँ ब्रह्मरूपी सूत्र में आबद्ध होकर जगत् के रूप में परिणत होती है। अनेक केवल एक में मिलकर एकाकार धारण किये हुए हैं। इससे अनेकत्व में कोई हानि नहीं होती।

इस व्याख्या को सुनकर यादवप्रकाश बहुत अप्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीरामानुज से कहा यदि हमारी व्याख्या तुम्हें उचित नहीं जान पड़ती है, तो तुम्हारा यहाँ आना अच्छा नहीं और वे गुरु को प्रणाम करके अपने घर चले गये।

श्रीमहापूर्ण स्वामी से दीक्षा ग्रहण

वैश्य कुलोत्पन्न काञ्चीपूर्ण नाम के एक महात्मा थे। उन्हें बाल काल से ही बरदराज भगवान के चरणों में विशेष प्रेम था वे अभिमान रहित होकर अनवरत वरदराज की प्रसन्नता के लिए कर्म करते थे। गरमी के दिनों में शीतल जल सिक्त पंखा हाथ में लेकर वरदराज भगवान के पास डुलाते रहते थे। सांसारिक प्रपञ्चों से मुक्त होकर भगवान की सेवा में संलग्न रहने वाले निर्मल हृदय श्रीकाञ्चीपूर्ण से भगवान बात करते थे।

श्रीरामानुजाचार्य जी सैद्धान्तिक विरोध के कारण यादव प्रकाश से अलग हो गये थे। वे घर पर ही शास्त्र का चिन्तन करते रहते थे। एक दिन महात्मा श्रीकाञ्चीपूर्ण उनके घर के पास से जा रहे थे। श्रीरामानुजाचार्य ने उनका दर्शनकर अपने को भाग्यशाली माना। श्रीकाञ्चीपूर्ण से श्रीरामानुजाचार्य ने शिष्य बनाने के लिए आग्रह किया; परन्तु श्री काञ्चीपूर्ण ने कहा कि मैं उसके योग्य नही हूँ। श्री रामानुजाचार्य में विशेष भक्ति का लक्षण प्रकट हो रहा है। अत: श्रीकाञ्चीपूर्ण स्वामी से कहा कि भगवान आपसे बात करते हैं। अत: आप श्रीवरदराज भगवान से पूछकर बतलाये कि मैं किन से पञ्च संस्कार ग्रहण करूँ। श्रीकाञ्चीपूर्ण ने भगवान से पूछकर कहा कि उनका आदेश है कि श्रीमहापूर्ण स्वामी से शिष्य बनें।

महापूर्णाचार्य महात्मानं समाश्रय गुणाश्रयम्।।

श्रीमहापूर्ण स्वामी श्रीरङ्गम् रहते थे।

दीक्षा एवं संन्यास

श्रीरङ्गम् के भक्तों ने श्रीमहापूर्ण स्वामी से काञ्ची जाने के लिए प्रार्थना की। उनका उद्देश्य था कि श्रीरामानुजजी को दीक्षित कर श्रीयामुनाचार्य के सिद्धान्त के प्रचारार्थ उन्हें श्रीरङ्गम् ले आवें। श्रीमहापूर्ण स्वामी काञ्ची के लिए प्रस्थान कर दिए। मार्ग में मदुपरान्त में एक विष्णु भगवान के मन्दिर के पास तालाब में स्नानार्थ ठहर गये। इधर काञ्ची से श्रीरामानुजाचार्य उनसे दीक्षा के लिए जा रहे थे। वे भी वहाँ पहुँच गये। श्रीमहापूर्ण स्वामी का दर्शन कर श्रीरामानुजजी कृतकृत्य हो गये। स्नान के बाद श्रीरामानुजजी ने महापूर्ण जी से वैष्णवी दीक्षा के लिए प्रार्थना की । श्रीमहापूर्ण जी ने कहा कि काञ्ची चलकर श्रीवरदराज भगवान की सन्निधि में दीक्षा कार्य सम्पन्न होगा। श्रीरामानुजजी ने उनसे कहा कि माहत्मन्! हमको एक मुहूर्त्त का भी बिलम्ब असह्य मालूम हो रहा है।

मृत्यु का कुछ ठिकाना नहीं है—

स्वपन्तं वापि भुंजानं गच्छन्तमपि वर्त्मनि ।
युवानमपि बालं वा स्ववंशे कुरुते विधिः ।।

सोये हुए, भोजन करते हुए, मार्ग में जाते हुए, युवा हो अथवा बालक हो मृत्यु सब अवस्था में अपने वश में कर लेती है। अत: आप इसी समय अपने चरणों में आश्रय दें। अत: श्रीमहापूर्ण स्वामी जहाँ ठहरे हुए थे, वहीं विष्णु मन्दिर में श्रीरामानुज जी को वैष्णवी दीक्षा दे दी। तदनन्तर काञ्चीवरम् आ गये।

संन्यास धारण

श्रीरामानुजाचार्य के हृदय में सतत यह भाव बना रहता था कि मैं किसी प्रकार परिवार से अलग हो श्रीविष्णु भगवान से विमुख जीवों के उद्धारार्थ कर्म करूँ। भगवत्कृपा से कतिपय कारण वश श्रीरामानुजाचार्य जी २० वर्ष की अवस्था में अपनी पत्नी को श्वसुरगृह भेजकर संन्यास धारण कर लिए। श्रीवैष्णव परम्परा के संन्यासी शिखा, यज्ञोपवीत और ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण कर हाथ में त्रिदण्ड रखते हैं। मन, वचन और शरीर को अपने वश में रखने के उद्देश्य से त्रिदण्ड धारण किया जाता है अर्थात् मन से किसी प्रकार के गलत न सोंचे, वचन से किसी को कष्ट न दे और शरीर से किसी को पीड़ा न पहुँचाये

श्रीरामानुजाचार्य के शिक्षागुरु यादवप्रकाश थे। वे सैद्धान्तिक मतभेद के कारण श्रीरामानुजाचार्य जी को अपने पास से अलग कर दिये थे। किन्तु भगवत्कृपा से वे ही यादवप्रकाश रामानुजाचार्य के अलौकिक प्रभाव को जानकर उनसे श्रीवैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर संन्यासी हो गये। उनका नाम गोविन्द दास पड़ा।

श्री आचार्यजी के पाँच गुरु

१. श्रीमहापूर्ण स्वामी ने श्रीरामानुजाचार्य को पञ्च संस्कार करके सिद्धित्रय, गीतार्थ-संग्रह और आगम प्रामाण्यम् आदि ग्रन्थों का बोध कराया।
२. श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी ने श्रीआचार्यजी को १८ बार मन्त्रार्थ रहस्य का उपदेश किया है।
३. श्रीमालाधर स्वामी से श्रीआचार्य जी ने श्रीशठकोपसूरि निर्मित सामवेद के सारभूत सहस्त्रगीति का सम्यग् ज्ञान प्राप्त किया था।
४. श्रीवररङ्गपूर्ण स्वामी ने श्रीआचार्यजी को वेदान्त का सारगर्भित रहस्य का उपदेश किया।
५. श्रीशैलपूर्ण स्वामी ने महर्षि वाल्मीकि निर्मित रामायण का तात्त्विक ज्ञान श्रीआचार्य जी को दिया।

श्री आचार्यजी का दार्शनिक सिद्धान्त

श्रीस्वामी रामानुजाचार्य के प्रादुर्भाव से पूर्व, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता का गलत अर्थ करके आध्यात्मिक धरातल पर भ्रम फैलाया

गया कि जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म निर्गुण है और ज्ञान से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न स्वामी रामानुजाचार्य जी ने उन्हीं प्रस्थानत्रयी (गीता उपनिषद और ब्रह्मसूत्र) का भाष्य लिखकर स्पष्ट कर दिया कि तीन तत्त्व हैं चित्त् अचित्त् और ईश्वर। चित्त् का अर्थ है जीवात्मा जो देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि इन पाँचों से विलक्षण है। वह आनन्द स्वरूप, नित्य अणु अव्यक्त, अचिन्त्य, निरवयव, निर्विकार, ज्ञानाश्रय और सर्वेश्वर का शरीर होने से उनसे नियाम्य, धार्य और उसका शेष है।

अचित् कहते हैं ज्ञानशून्य को उसको जड़ प्रकृति, माया और अविद्या शब्द से वर्णन किया गया है। ज्ञानशून्य होने से जड़, विकार उत्पन्न करने के कारण प्रकृति, देह में आत्मबुद्धि, परतन्त्र आत्मा में स्वतन्त्रबुद्धि, अनीश्वर में ईश्वर बुद्धि आदि विपरीत बुद्धि उत्पन्न करने के कारण अविद्या तथा सृष्टि के विचित्र कार्यों को करने से माया कहते है। माया मिथ्या नहीं है, यह परिणाामी है। स्थूल जगत् का प्रतिक्षण परिवर्त्तन होता रहता है। सूक्ष्म पर जाकर विराम कर जाता है। प्रलय के बाद उसी सूक्ष्म से स्थूल की सृष्टि होती है। जगत् के साथ जीव का सम्बन्ध मिथ्या है। वस्तुत: जगत् मिथ्या नहीं है।

जड़ चेतन का समुदाय जगत् है, जगत् का सृजन पालन और संहार करने वाले को ब्रह्म कहते हैं। वही सर्वेश्वर विष्णु, राम, कृष्ण आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। जड़ चेतनमय जगत् ब्रह्म का शरीर है और ब्रह्म सबकी आत्मा है। वह अनन्तकल्याण गुणों एवं विभूतियों से युक्त है, इसलिए सगुण कहा जाता है। प्राकृत सत्व, रज और तम ये तीनों गुण ब्रह्म में नहीं हैं अत: वह निर्गुण है। सूक्ष्म जड़चेतन से विशिष्ट ब्रह्म कार्य है। अत: विशिष्टाद्वैत है।

कर्म एवं ज्ञान अङ्ग है और भक्ति अङ्गी है। भक्ति के बिना ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती है। ब्रह्म भक्ति से ही प्रसन्न होकर परमपद वैकुण्ठ देते हैं।

श्रीरामानुजाचार्य जी संन्यासियों में प्रधान थे इसलिए वे यतिराज, यतीन्द्र आदि विशेषण से विभूषित किए गए हैं। यतिराज श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज ने ब्रह्म, जीव और माया के सम्बन्ध में गलत निर्णय देने वाले पर मताबलम्बी पण्डितों को भारत में सर्वत्र घूम-घूमकर शास्त्रार्थ में परास्त किया।

अत एव वेदान्ताचार्य ने तत्त्वमुक्ताकलाप में कहा है कि—

गाथा तथागतानां गलति
गमनिका कापिलो क्वापि लीना ।
क्षीणा काणादवाणी
द्रुहिणहरगिरस्सौरभं नारभन्ते ।।
क्षामा कौमारिलोक्तिजगति
गुरुमतं गौरवाद् दूरवान्तं ।
का शङ्का शङ्करादेर्भजति
यतिपतौ भद्रवेदीं त्रिवेदीम् ।।

उन्होंने सभी जगह भगवान् विष्णु के मन्दिर एवं रामानुज मठ की स्थापना करायी है। उत्तर भारत में द्वारका, मथुरा, अयोध्या, मुक्तिनारायण, बदरिका-श्रम, नैमिषारण्य, पुष्कर, वृन्दावन आदि दिव्य स्थानों का दर्शन करते हुए शारदापीठ कश्मीर पहुँचे, वहाँ आपके वैदुष्य से प्रभावित होकर भगवती शारदा ने आपको श्रीभाष्यकार की पदवी से विभूषित किया।

यतिराज श्रीरामानुजाचार्य ने निम्नलिखित सात पुस्तकों का प्रणयन किया।

(१) श्रीभाष्य (२) गीताभाष्य (३) वेदार्थ संग्रह (४) वेदान्तदीप (५) वेदान्तसार (६) गद्यत्रय और (७) नित्याराधन।

श्रीरामानुज स्वामी के समय में भक्तों ने भूतपुरी में श्रीयतिराज स्वामी की मूर्ति तैयार करायी। उसमें श्रीस्वामीजी ने अपनी शक्ति का आधान किया।

तदनन्तर मन्दिर तैयार कर मूर्ति स्थापित हुई।

श्रीयतिराज स्वामी के अनेक प्रतिभाशाली शिष्यों ने इस भूतल पर विशिष्टाद्वैत दर्शन का आलोक देते हुए श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार किया। तदनन्तर श्रीयतिराजस्वामी श्रीरङ्गभगवान् के दिव्य चरणों की सन्निधि में रहने लगे। उनकी अवस्था देखकर वहाँ के भक्तों ने आग्रह किया कि आपका दर्शन सदा मिलता रहे एतदर्थ अपनी प्रतिकृति बनवाने का आदेश दिया जाय।

स्वामी जी ने आदेश दिया। भक्तों ने उनकी मूर्ति बनवायी। उसमें श्रीस्वामीजी ब्रह्मरन्ध्र को सूंघ-कर अपनी शक्ति दी। वह मूर्ति श्रीरङ्गम् में स्थापित है। श्रीयतिराज स्वामी १२० वर्ष की अवस्था में खृष्टाब्द १११६ माघशुक्ल दशमी शनिवार के मध्याह्न में अपने गुरु श्री महापूर्ण स्वामी की चरणपादुकाओं का दर्शन करते हुए परमपद के लिए प्रस्थान किए।

त्रिदण्डहस्तं सितयज्ञसूत्रं
काषायवस्त्रं लसदूर्ध्वपुण्ड्रम् ।
रथाङ्गशङ्खाङ्कित बाहुमूलं
रामानुजार्यं शरणं प्रपद्ये ।।

श्रीभाष्यकार द्वारा अवश्य आचरणीय उपदेश—

(१) पूर्वाचार्यों के उपेदशमय वाक्यों पर विश्वास करके आचरण करना चाहिए।

(२) भगवान् के मन्दिर, गुरुगृह और श्रीवैष्णव निवासी की ओर पैर पसारकर कभी न सोये।

(३) सोने के पूर्व और जगाने के पश्चात् गुरुपरम्परा का पाठ करे।

(४) किसी भी श्रीवैष्णव के आगमन की सूचना मिलने पर उसकी आगवानी करने को जाना चाहिए।

(५) भगवान् विष्णु के दिव्यमन्दिर, विमान, गोपुर आदि को देखते ही सिर झुकाकर उनको प्रणाम करे।

(६) विष्णु पादोदक अथवा किसी भक्त का श्रीपादतीर्थ अथवा शुद्ध पेय जल को अवैष्णव के सामने ग्रहण न करे।

(७) तत्त्वत्रय, ब्रह्म, जीव और प्रकृति का रूप रहस्यत्रय मूलमन्त्र, द्वयमन्त्र और चरममन्त्र का जिसे भली-भाँति ज्ञान नहीं है ऐसे श्रीवैष्णव का श्रीपादतीर्थ कभी न लें।

(८) भगवत्सन्निधि में भागवतों के दिये हुए तीर्थ प्रसाद को ''दास आज उपवास व्रत में है'' कहकर कभी न त्यागे उसे बड़ी श्रद्धा भक्ति से ले।

(९) सर्वपापहारी भगवत्प्रसाद को कभी उच्छिष्ट न समझे।

(१०) श्रीवैष्णवों के सामने अपनी प्रशंसा न करे।

(११) श्रीवैष्णवों की सन्निधि में किसी का तिरस्कार भी न करे।

(१२) २४ घण्टे में कम से कम एक घण्टा तो नित्य अवश्य ही आचार्यों का गुणगान करे।

(१३) जो पुरुष रात-दिन परनिन्दा किया करता हो उससे कभी बातचीत न करे।

●

दैनिकचर्या को आदर्श बनाने वाला सात्त्विक तत्त्व : विद्या

'विद्या तत्र सुदुर्लभा'। मनुष्य-शरीर प्राप्त करके भी विद्याहीन जीवन पशु के समान हो जाता है, अत एव मनुष्य-शरीर की अपेक्षा भी विद्वान् का शरीर श्रेष्ठ है। विद्या मनुष्य का परम धन है। दूसरे धन को चोर चोरी करके ले सकता है, परन्तु विद्या को कोई चुरा नहीं सकता। इसको जितना ही दान करें, उतना ही यह वृद्धि को प्राप्त होती है। ●

विष्णुसहस्रनाम के (७६-१००) नामों का विशद् भाष्य (हिन्दी में) गताङ्क से आगे

इससे पूर्व अङ्क में श्रीविष्णुसहस्रनाम के १९ नामों का अर्थ दिया गया है ७६वाँ नाम यहाँ से प्रारम्भ किया जा रहा है—

७६. विक्रमी:—विक्रम: प्रशस्तविक्रम: अस्य अस्ति इति विक्रमशब्दात् प्रशंशायामिनि: । ''विक्रम: पौरुषं प्रोक्त: तद्वत्वात् विक्रमी बुधै:'' ।

मनसैव जगत्सृष्टिं संहारञ्च करोति य: ।
तस्यारिपक्ष क्षपणे कियानुद्यमविस्तर: ।।

जो मन से इच्छा होते सारी सृष्टि की रचना कर लेता है भला उसे शत्रुओं को आहत करने में कौन-सा उद्यम करना पड़ेगा? अर्थात् अनायास उसका नाश हो जायेगा । जहाँ कहीं उनके सङ्कल्प में बाधा आती है वहीं उनका पराक्रम दिखायी देता है । इसी पौरुष के कारण वे विक्रमी हैं ।

७७. धन्वी:—धनु: नित्यमस्य अस्तीति धन्वी इति न प्रत्यय: । ''निरतिशय पौरुषानुरूपं दिव्यं सर्वं दिव्यायुधोपलक्षकम् शार्ङ्ग धनु: शरासनं नित्यम-स्यास्तीति'' ।

शरानानाविधाकारा: धनुरायत विग्रहम् ।
अनुव्रजन्ति काकुत्स्थं सर्वे पुरुष विग्रहा: ।।

धनुषधारी भगवान् श्रीराम के पीछे अनेकों दिव्यायुध पुरुष विग्रह धारण-कर चला करते थे । भगवान के आयुध उनके पौरुष को प्रकट करने वाले हैं । उन दिव्यायुधों में एक शार्ङ्ग धनु सदा उनके दिव्य कर-कमलों में नित्यावयव जैसे विराजमान रहता है । अत एव उनकी संज्ञा धन्वी है ।

७८. मेधावी—घीर्धारिणा वती मेधा। मेधा अस्ति अस्य इति मेधावी मेधाशब्दात् विनि प्रत्यय: । मेधावी इति ।

जैसा उनमें असीम बल है वैसा ही असीम ज्ञान भी है । अत: मेधावी उनकी संज्ञा है ।

७९. विक्रम:—वि: पक्षी गरुड़ तेन (विना) क्रमेण तत्र तत्र स्वेच्छा विहारगतागतम् अस्य । विपूर्वक क्रम धातु: भावेधञ् । ''गमनं पक्षिराजेन यस्य विक्रम उच्यते'' ।

भगवान् गरुड़ के द्वारा स्वेच्छा से गमन करते हैं । गरुड़ वेदमय हैं ''वेदात्मा विहगेश्वर:'' वेद वेद्य भगवान् का वाहन वेदात्मा उचित ही है । ये आयुध के समान वाहन भी भगवान् के नित्य विभूति के अर्न्तगत ही है ।

८०. क्रम:—क्रमते इति क्रम आत्मने पद विषयक क्रम् धातो अच् प्रत्यय: ।

उक्त प्रकारक नित्य विभूति से भगवान् प्रकाशमान हैं । यही प्रकाश अर्थ वाला क्रम धातु यहाँ है; क्योंकि आत्मने पदविषयक क्रम प्रकाश अर्थ देता है ।

८१. अनुत्तम:—उत्कृष्टवाचक उत् शब्दात् अतिशये तमप् तत: नञ् समास: । न विद्यते उत्तम: यस्मात् स अनुत्तम: । उत्तमो नास्ति यस्मात् स अनुत्तम उदाहत: ।''

भगवान् सर्वोत्तम हैं । ''मत्त: परतरं नान्यत्'' नतत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ''समभ्यधिकदरिद्र:'' भगवान् के समान या उनसे उत्कृष्ट कोई नहीं है । अत: वे अनुत्तम कहाते हैं ।

८२. दुराधर्ष:— ञि घृषां प्रागल्भ्ये धातु: आङ् पूर्व: दुर् शब्देऽव्यय उपपदे खल प्रत्यय: ।

भगवान् अत्यन्त गम्भीर हैं । अत: अगाध समुद्रवत् अक्षोभ्य: हैं । दुर्विज्ञेयगति: यस्मात् दुराधर्ष:

प्रकीर्तित: ।

८३. कृतज्ञः—कृतं जानाति इति कृतज्ञ: ज्ञा धातु: क प्रत्यय: ।

प्राणिर्भियत्कृतं कर्म तज्ज्ञात्वा फलदो मत: ।
फल पुष्पादिना तुष्ट: कृतज्ञो मोक्षदानत: ।।

संसार के लोग भगवान् के लिये जो कुछ भी करते हैं उसे वे जानते हैं और यथेष्ट फल प्रदान करते हैं ।

८४. कृतिः—कृञ् धातु: क्तिन् प्रत्यय: । पुरुष प्रत्यय: कृति अथवा क्रिया कृति: ।

भगवान् के लिये जो कुछ किया जाता है वह सुकृत है । इस सुकृत के मूल में भगवान् की प्रसन्नता रहती है इसलिये वे कृति हैं । ''यंयमेभ्यो लोकेभ्य: उन्निनीषति तं तं एष एव साधुकर्मकारयति'' । जिसे जिसे वे अपनाना चाहते उसे सत्प्रेरणा द्वारा साधु कर्म कराकर उद्धार कर देते हैं ।

८५. आत्मवान्—स्वेमहिम्नि प्रतिष्ठानात् आत्मवान् आत्मन् शब्दात् मतुप् प्रत्यय: ।

सुकृत कर्म करनेवाले सुकृतात्मा जन भगवान् के अपने ही होते हैं । उनके कारण भगवान् आत्मवान् कहलाते हैं । ''ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्'' सुकृतात्मा ज्ञानी भगवान् के लिये आत्म स्वरूप बन जाते हैं अत: आत्मवान् उनकी संज्ञा हुई ।

सुरेश: शरणं शर्म विश्वरेता: प्रजाभव: ।
अह: सम्वत्सरो व्याल: प्रत्यय: सर्वदर्शन: ।।
(श्लो० १०)

८६. सुरेशः—सुराणाम् ईश: । फल्गुपदलिप्सूनां ब्रह्मादीनामपि संविधाता यथा—ब्रह्मा-यस्य प्रसादा-दहमच्युतस्य भूत: प्रजा सर्गकरोऽन्तकारी'' ।

भगवान छोटे-छोटे पद चाहने वाले ब्रह्मा आदि देवताओं के ऊपर नियन्त्रण करते हैं; क्योंकि ब्रह्मा ने कहा है—'यस्य प्रसादादहं सर्वम्' अर्थात् जिस भगवान अच्युत की कृपा से मैं प्रजाओं की सृष्टि करने वाला, रुद्र नाश करने वाले हैं । अत एव भगवान की संज्ञा सुरेश है ।

८७. शरणम्—शृ धातु अत्र रक्षणार्थ: ल्युट् प्रत्यय: शरणं गृहरक्षित्तो: अविशेषेण सर्वेषां शरणम् ।

सभी आर्तियों का आर्त दु:ख नाशकर अपनी शरण प्रदान करते हैं । जिनकी उपासना से भय दु:ख पाप एवं बन्धन समाप्त हो जाते हैं तथा प्रतिष्ठा सुख एवं ज्ञान की प्राप्ति होती है वे शरण हैं। दु:खियों के दु:ख दूर कर रक्षा करने के कारण ही उनकी संज्ञा शरण है ।

८८. शर्म—सुखार्थक शृ धातु मनिन् प्रत्यय: ।

भगवान् सुख स्वरूप हैं । प्रभूत: से क्रम तक (६१-८०) तक के नामों में भगवान् के नित्य विभूति वर्ती नित्य सूरिजनों के साथ रहनेवाले सम्बन्धों का अनुभव करने पर स्वभावत: यह जिज्ञासा होती है कि क्या इस लोक में भी ऐसा कोई साधन है जिसके द्वारा नित्य विभूति के आनन्द का अनुभव किया जा सके? शरण और शर्म (८७-८८) तक इस जिज्ञासा का समाधान मिल जाता है । सुकृत् के मूल में अपनी प्रसन्नता को प्रतिष्ठित कर भगवान् समस्त प्राणियों के साधन और लक्ष्य रूप में उपस्थित होते हैं और परम सुख प्रदान करते हैं । यह अनुत्तम (८१) से अब तक के नामों का तात्पर्य है । भगवत्प्राप्ति के साधन को भगवान् किस प्रकार सम्पन्न करते हैं यह अगले नामों से प्रकट होता है ।

८९. विश्वरेता:—विश्वं रेता: वीर्यं कार्यमस्य बहुव्रीहि: । रीङ् श्रवणे धातु: असुम् प्रत्यय तुडागमे च रेतस् दीर्घे रेता: शब्दस्य सिद्धि: ''विचित्रा देह सम्पत्तिरीश्वराय निवेदितुम् पूर्वमेव कृता ब्रह्मन् हस्त-पादादि संयुतम्'' ''एतस्माज्जायते प्राणो मन:सर्वेन्द्रि-याणि च'' खं वायु ज्योतिराप: पृथिवी विश्वस्य धारिणी ''सप्त प्राणा भवन्ति तस्मात्'' ।

मधुसूदन नाम से प्रकट हो चुका है कि भगवान् दिव्य सूरियों की दिव्य इन्द्रियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। इस विश्व में ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का विवरण भगवान् ने इसीलिये किया है कि जिससे प्राणी सुख स्वरूप भगवान् की ओर अग्रसर हो सके। ज्ञान कर्मेन्द्रियरूप विश्व उनका कार्य है। अतः वे 'विश्वरेता' कहलाते हैं।

९०. प्रजाभवः—सर्वा प्रजाः तद् दत्तैरिन्द्रियादिभि उपकरणैः तस्मिन्नाभिमुख्या भवति इति प्रजाभवः। भूधातुः अधिकरणे घ प्रत्ययः।

भगवान् द्वारा प्रदत्त ज्ञान एवं कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रजा भगवान् की ओर अभिमुख (अग्रसर) होने में समर्थ होती है।

९१. अहः—अहीनम् ओहाक् त्यागे धातु कनिन् प्रत्ययः नञ् पूर्वः नन् लोपः आलोपः। न हीनाः सन्ति यस्य स अहः। नहि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात् गच्छति।

भगवान् के लिये कोई प्राणी हीन नहीं है। अनादि अविद्या की निद्रा में सोये हुए लोगों के लिये वे प्रकाशमय दिन के स्वरूप में उपस्थित होते हैं।

९२. संवत्सरः—संपूर्वक वस् धातुः सरन् प्रत्ययः सकारस्य तकारे। अनादि अविद्या प्रबुद्धस्य समुद्धरणाय संवसति इति।

जो अविद्या की निद्रा से जाग जाते हैं उनके उद्धार के लिये भगवान् सदा तैयार रहते हैं। अतः उनकी यह संज्ञा है। ''एवं तेषु प्रबुद्धेषु वसति समुद्धरणाय यः'' तेषामहंसमुद्धर्ता'' ''आनयैनं हरि श्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया''।

९३. व्यालः—व्याङ् पूर्वक ला आदाने धातु क प्रत्ययः। अभयप्रदानेन तान् व्यालाति = आदत्ते (आत्मसात करोति इति व्यालः)।

विभीषणादि भक्तों को अभयदान देकर अपनाया। दुष्ट रावण को भी शरण आने पर अभय दान का संकल्प भगवान् ने लिया था, किन्तु वह आया ही नहीं।

९४. प्रत्ययः—प्रत्येति, प्रतीयते वा प्रतिपूर्वक इण् ईङ्ग वा गत्यर्थक धातु अच् प्रत्ययः।

भगवान् स्वयं विश्वासपात्र रूप में सबों को बोध कराने के कारण प्रत्यय संज्ञक हैं।

भूयोभूयोऽपि ते ब्रह्मन् विश्वास्यः पुरुषोत्तमः।
यदि ते हृदयं वेत्ति यदि ते प्रत्ययो मयि।।

९५. सर्वदर्शनः—तेषां सर्वं स्वमहिमानं दर्शयति इति दृश् धातुः ल्यु प्रत्ययः।

भगवान् उन सबों को अपनी सारी महिमा का दर्शन कराते हैं।

''तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्'' तस्येष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।

अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः।
बृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः।।
(श्लो०सं० ११)

९६. अजः—गति क्षेपणार्थक अज् धातुः पचाद्यच् प्रत्ययः अजति = क्षिपति इति अजः। स्व प्राप्ति परिपन्थि सर्वं स्वयमेव क्षिपति = दूरीकरोति इति अजः।

भगवत्प्राप्ति के मार्ग में आनेवाले बाधाओं को भगवान् स्वयं निराकरण करते हैं।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।
'अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि' इत्यादि।

९७. सर्वेश्वरः—सर्वान् आशु अश्नुते व्याप्नोति अशू व्याप्तौ धातु अश्नोते आशु कर्मणि वरट् समर्थानामसमर्थानां च सर्वेषां शरणागतानां विलम्बनं वैकृत्य च परिहर्तुम् आशु तान् सर्वानश्नुते = व्याप्नोति सर्वेश्वरः।

समर्थ एवं असमर्थ सभी प्रकार के साधकों को

वे स्वयम् प्राप्त होते हैं।

९८. सिद्धः—षिधु संराद्धौ धातुः श्रु प्रत्ययः। स्वयमेव सिद्धः नोपायैः साध्यः। भगवान् स्वयं स्वरूपतः सिद्ध हैं।

९९. सिद्धिः—पूर्ववत् षिधु धातुः क्तिन् प्रत्ययः। उपायैरपि अयमेव साध्यते इति सिद्धिः।

अन्यान्य उपायों के द्वारा उनकी सिद्धि अर्थात् प्राप्ति होती है। ''अयमेव ह्युपायैश्च सिद्धिस्स्यात् साध्यते यतः।''

१००. सर्वादिः—सर्व मूलम् = आदिः सर्वादि तेषां परावर सर्व पुरुषार्थ मूलं ''ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्, प्राप्नुवन्ति सदाकामान् इहलोकेपरत्र च'' सर्वान् कामान् प्राप्नुवन्ते विशालान् त्रैलोक्येऽस्मिन् कृष्ण नामाभिधानत्।

आश्रित जीवों के छोटे-बड़े सभी पुरुषार्थों का मूल होने के कारण भगवान् को सर्वादि कहा जाता है।

कलिकाल में माँ लक्ष्मी का प्राकट्य

नीलातुङ्ग स्तनगिरि तटे सुप्तमुद्बोध्य कृष्णं पारार्थ्यं स्वं श्रुतिशतभिरस्सिद्धमध्यापयन्ती स्वोच्छिष्टायां स्रिजगिनिगलितं या बालात्कृत्य भुङ्क्ते गोदा तस्यै नम इदमिदं भूय एवास्तु भूयः ।

अस्तु कलियुग के '९८' वर्ष बितने के बाद तमिलनाडू के विल्लीपुतुर प्रान्त में श्री विष्णुचित स्वामी के तुलसी के बगीचे में प्रातःकाल एक प्रकाश पुञ्ज प्रकट हुआ जो एक कन्या के रूप में परिणत होकर माँ भगवती का 'गोदाम्बा' स्वरूप का इस धरती पर कलिकाल में प्रादुर्भाव हुआ। श्री विष्णुचित स्वामी भगवान नारायण के गरुडवाहन के अंश से प्रकट हुए थे, ये बारह आलवार में एक थे। तुलसी की सेवा और प्रभु की आराधना से प्रसन्न होकर श्री भूदेवी अर्थात् माँ लक्ष्मी गोदाजी के रूप में अतवरित हुई। आप कर्क मास दिन मङ्गलवार को तुलसी पुष्प-वाटिका में नवजात कन्या के रूप में प्रकट हुईं।

गोदाम्बा जी ने '३०' पासुर की रचना कर तिरुपावे गाथा को पिरोकर भगवान वटपत्रशायी के श्री चरणों में समर्पित की जिसका पाठ भगवान के सम्मुख श्री वैष्णव लोग नित्य करते हैं। इस तरह अर्चना और स्तुति प्रभु को अतिप्रिय है इस तथ्य को जीव मात्र को बताने के लिए इस कलिकाल में माँ लक्ष्मी गोदाम्बाजी के रूप में आकर हम अज्ञानी जीव को प्रभु को प्राप्त करने का मार्ग सुगम किए।

अस्तु श्रीविष्णुचित्त स्वामी प्रभु की सेवा के लिए पुष्प तुलसी का चयन कर माला बनाकर प्रभु को समर्पित करते थे, गोदाजी जब कुछ बड़ी हो गई तब माला बनाने में पिता विष्णुचित्त की सहायता किया करती थी, पिता की अनुपस्थिति में माला बनाकर पहन लेती और शीशे में देखती क्या मैं प्रभु के लायक हूँ या नहीं। पुनः माला खोल कर रख देती पिता विष्णुचित आते और वहीं गोदा की पहनी हुई माला ले जाकर प्रभु को धारण करा देते अर्थात् प्रभु को माला पहना देते।

एक दिन गोदाम्बा जी माला पहन कर शीशे में देख ही रही थी कि पिता विष्णुचित्त अचानक आ गए, उन्होंने प्रभु के लिए बनाई हुई माला को बेटी गोदाम्बा को पहने हुए देखकर बहुत नाराज हुए और जल्दी-जल्दी एक-दूसरी छोटी-सी माला तैयार कर प्रभु के लिए ले गए।

भगवान रङ्गनाथ को जब दूसरी माला धारण कराई गई तो वह माला टूटकर गीर पड़ी और अर्चा विग्रह से आवाज आई—'विष्णुचित्त मुझे गोदा की पहनी हुयी माला ही चाहिए। नित्य जो सुगन्धित और दिव्यता उस माला में रहती थी, वो आज इस

माला में नहीं है'। यह आवाज सुनकर पुजारी लोग एका-एक अवाक् रह गए, पुन: विष्णुचित्त स्वामी घर जाकर वही गोदाम्बा की पहनी हुई माला ले आकर प्रभु को अर्पण किए। उस दिन से पिता विष्णुचित्त गोदा को अवतारी मानने लगे। आज भी सभी बड़े मन्दिरों में माला परिवर्तन होता है, तिरुमलै, श्रीरङ्गम्, वृन्दावन आदि मन्दिरों में माला परिवर्तन होता है। प्रभु की माला माँ लक्ष्मीधारण करती हैं और लक्ष्मी की माला प्रभु धारण करते हैं—

माला को कैसे धार आई प्यारी बेटी गोदा
यत्न से तुलसी लाकर बनवाई जयमाला
गोदा तुने क्या कर डाला
माला को कैसे धार आई दुलारी बेटी गोदा।

जिस तरह द्वापर में गोपीयाँ भगवान श्रीकृष्ण से प्रेम करतीं थीं उसी प्रकार इस कलियुग में गोदाम्बा जी ने भी प्रभु से प्रेम किया। लेकिन ये तो कलियुग है भगवान श्रीकृष्ण तो हैं नहीं? तो भगवान के अनुसार गोदाम्बा जी ने श्री बिल्लीपुत्तुर को वृन्दावन मानकर, भगवान के मन्दिर को नन्दभवन मानकर, आलवारों को अपनी सखि गोपी मानकर प्रभु के प्रति अटूट विश्वास लेकर भगवान श्री रङ्गनाथ प्रभु के साथ नित्य विहार करती थीं। गोदाम्बा जी रोज सुबह उठकर प्रभु को जगाने के लिए जाती थीं। प्रभु को प्राप्त करने के लिए गोदाजी ने दो मनौती माने थे एक सौ घड़े खिरान्न का भोग प्रभु को लगाऊँगी और वृन्दावन में विहार करूँगी; लेकिन जब प्रभु मिल गए, प्रभु की प्राप्ति हो गई तब गोदाम्बा जी की वह मनौती पूर्ण नहीं हुयी, तदनन्तर उस मनौती को भाष्यकार स्वामी श्रीरामानुजाचार्य जी ने सौ घड़े खिरान्न का भोग भगवान श्रीरङ्गनाथ को लगाकर गोदाजी के अग्रज कहलाये और दूसरी मनौती के रूप में स्वामी रङ्गदेशिक जी महाराज ने वृन्दावन में श्रीरङ्गनाथ मन्दिर बनवाकर गोदा रङ्गनाथ को स्थापित किये। वृन्दावन मन्दिर में भगवान के साथ गरुड़ जी भी हैं जो श्रीरङ्गम से प्रभु को लेकर आये थे। इस तरह माँ गोदाम्बा की मनौती दो महापुरुषों ने पूर्ण किए।

अस्तु गोदाम्बा जी ने रङ्गनाथ प्रभु के साथ एकाकार होने की निश्चय कर लिया जिस तरह गोपियाँ कात्यायनी का व्रत मार्गशीर्ष मास में प्रभु श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए करती थीं उसी तरह गोदाम्बा जी ने चतुर्मास में २९ दिन का व्रत की जिसका उत्सव आज भी श्रीरङ्गम विल्लिपुत्तुर आदि में मनाया जाता है।

अस्तु गोदा जी की सेवा और निष्ठा से प्रसन्न होकर प्रभु प्रकट होकर वरदान माँगने को कहे, तब माँ गोदाम्बा ने प्रभु को ही माँग ली। यह तथ्य सुनकर देवता ऋषि सब लज्जित हो कहने लगे कि हम सब मूर्ख हैं जो प्रभु के मिलने पर धन, ऐश्वर्य माँगते हैं। धन्य हैं गोदा जो प्रभु को ही माँग ली।

इस तरह माँ गोदाम्बा ने अपनी स्तुति और तुलसी अर्चना से प्रभु को प्रसन्न कर प्रभु में एकाकार हो गई। गोदाम्बा जी ने अपनी स्तुति को दो ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है—(१) तिरुपावे, (२) नाय्यिार तिरुमौली। हम अज्ञानी मनुष्यों को प्रभु की भक्ति किस तरह करनी चाहिए यही बताने के लिए जीव मात्र पर दया की वृष्टि करने के लिए श्री लक्ष्मी माँ गोदा रूप में अवतरित हुई।

गोदाम्बा जी की सेवा आराधना से प्रसन्न होकर प्रभु रङ्गनाथ विल्लीपुत्तुर जाकर वैदिक रीति से पाणि ग्रहण करते हैं और सभी को देखते-देखते माँ गोदाम्बा को अपने में समाहित कर लिए। जो श्रीलक्ष्मी त्रेता में सीता रूप में भूदेवी के अंश से द्वापर में श्री देवी रूक्मिणी रूप में वही श्रीलक्ष्मी इस कलिकाल में गोदाम्बा के रूप में विल्लिपुत्तुर में प्रकट होकर हम अज्ञानी जीवों को प्रभु को अर्चना और स्तुति द्वारा प्रसन्न करने की शिक्षा देकर प्रभु में एकाकार हो गईं। ऐसे भी श्री का अर्थ जीव पर दया करना ही होता है। माँ लक्ष्मी हमेशा जीव का कल्याण ही चाहती हैं। अस्तु!।। **श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।**

नारायण द्वारा उपदिष्ट चतुश्श्लोकी भागवत

भगवान नारायण के नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ। उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी अपने जन्म-स्थान कमल पर बैठकर सृष्टि करने की इच्छा प्रकट किए; परन्तु जिस ज्ञान दृष्टि से सृष्टि का निर्माण कर सकते थे और जो सृष्टि व्यापार के लिए आवश्यक ज्ञान था, वह उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। इससे वह चिन्तित थे भगवान ने आकाशवाणी की कि इसके लिए तुम तप करो। ब्रह्माजी ने आकाशवाणी करने वाले को देखने की इच्छा से चारो ओर अपने शिर को घुमाया इसलिए उनके चार मुख हो गये; परन्तु उन्हें कोई दिखाई नहीं पड़ा। वे कमल पर बैठ गए और उन्होंने निर्णय लिया कि मुझे तप करने की आज्ञा मिली है। इसलिए मैं तप करता हूँ। उन्होंने अपने मन को तपस्या में लगा दिया। वे एक हजार वर्ष तक तपस्या किये। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें अपना श्रेष्ठ लोक दिखाया। उस लोक में किसी भी प्रकार के क्लेश मोह और भय नहीं होता है। देवगण जिनके स्तुति करते रहते हैं उस लोक में रजोगुण, तमोगुण और मिश्रसत्त्व नहीं है। न वहाँ काल की पहुँच है और न माया की, उस लोक में भगवान के पार्षद निवास करते हैं। पार्षदों का आभा से युक्त श्याम शरीर कमल दल के समान कोमल नेत्र और पीले रङ्ग के वस्त्र सुशोभित हो रहे हैं। उनकी चार भुजायें हैं, वे स्वयं अत्यन्त तेजस्वी हैं और सुवर्ण के प्रभामय आभूषण धारण किये हुये हैं। उनके कानों में कुण्डल, मस्तक पर मुकुट और कण्ठ में मालायें सुशोभित हो रही हैं।

जिस प्रकार आकाश बिजली सहित बादलों से सुशोभित होता है, उसी प्रकार महात्माओं के दिव्य तेजोमय विमानों से स्थान सुशोभित हो रहा है। उस लोक का नाम वैकुण्ठलोक है जहाँ लक्ष्मी जी सुन्दर रूप धारण करके भगवान के चरण-कमलों की अनेकों प्रकार से सेवा करती रहती हैं। ब्रह्मा ने लक्ष्मीपति भगवान का दर्शन किया। वहाँ पर सुनन्दनन्द प्रवल आदि मुख्य-मुख्य पार्षद-गण प्रभु की सेवा कर रहे हैं। भगवान के शिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल और कन्धे पर पीताम्बर जगमगा रहे हैं। वक्ष:स्थल पर एक सुनहरी रेखा के रूप में श्रीलक्ष्मी जी विराजमान हैं। उनकी चार भुजायें हैं।

भगवान ने ब्रह्मा से कहा—ब्राह्माजी! तुम्हारे हृदय में तो समस्त वेदों का ज्ञान विद्यमान है। तुमने सृष्टि-रचना की इच्छा से चिरकाल तक तपस्या करके मुझे भली-भाँति सन्तुष्ट कर दिया है। मन में कपट रखकर योग साधन करने वाले मुझे कभी प्रसन्न नहीं कर सकते। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वही वर मुझसे माँग लो; क्योंकि मुँह माँगी वस्तु देने में मैं समर्थ हूँ। ब्रह्माजी! जीव के समस्त कल्याणकारी साधनों का विश्राम-पर्यवसान मेरे दर्शन में ही है। तुमने मुझे देखे बिना ही उस सूने जल में मेरी वाणी सुनकर इतनी घोर तपस्या की है, इसी से मेरी इच्छा से तुम्हें मेरे लोक का दर्शन हुआ है।

तुम उस समय सृष्टिरचना का कर्म करने में किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। इसी से मैंने तुम्हें तपस्या करने की आज्ञा दी थी; क्योंकि निष्पाप तपस्या मेरा हृदय है और मैं स्वयं तपस्या की आत्मा हूँ। मैं तपस्या से ही इस संसार की सृष्टि करता हूँ, तपस्या से ही इसका धारण-पोषण करता हूँ और फिर तपस्या से ही इसे अपने में लीन कर

लेता हूँ। तपस्या मेरी एक अपरिमित शक्ति है। ब्रह्मा जी ने कहा कि आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिये कि मैं सजग रहकर सावधानी से आपकी आज्ञा का पालन कर सकूँ और सृष्टि की रचना करते समय भी कर्त्तापन आदि के अभिमान से बँध न जाऊँ।

प्रभो! आपने एक मित्र के समान हाथ पकड़कर मुझे अपना मित्र स्वीकार किया है। अत: जब मैं आपकी इस सृष्टि रचना रूपी सेवा में लगूँ और सावधानी से पूर्वसृष्टि के गुण-कर्मानुसार जीवों का विभाजन करने लगूँ, तब कहीं अपने को जन्म-कर्म से स्वतन्त्र मानकर प्रबल अभिमान न कर बैठूँ।

ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर भगवान ने कहा कि अति गोपनीय विज्ञान (भक्ति) समन्वित रहस्य मन्त्र सहित मेरा भगवत्स्वरूप का ज्ञान और भगवत् अङ्ग चिदचिद् स्वरूप का ज्ञान मैं तुम्हें कहता हूँ इसे ग्रहण करो। मैं परिक्षिन्न परिणाम रहित जैसी सत्तावान् जिस रूप, गुण और कर्म वाला हूँ वैसा ही मेरा स्वरूप गुण, विभूति विषयक यथार्थ ज्ञानवान हो। वैसा ही मेरे अनुग्रह से तुम्हें प्राप्त हो। भगवान ने ऐसा कहकर ब्रह्मा को निम्नलिखित चतु:श्लोकी श्रीमद्भागवत का उपदेश किया—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।१।।
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।।२।।
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।।३।।
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वविज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा।।४।।

भगवान ने कहा कि सृष्टि के पहले चिद् अचिद् से विलक्षण मैं ही था। सृष्टिकाल में जो यह जगत् है वह भी मैं ही हूँ इसका भाव यह है कि तत्त्व तीन हैं–जड़, चेतन और ईश्वर। इनमें जड़ चेतन की दो अवस्थाएँ होती हैं–सूक्ष्म और स्थूल। प्रलयकाल में जड़-चेतन सूक्ष्मावस्था में रहते हैं और सृष्टिकाल में स्थूलावस्था में। सूक्ष्म का अर्थ है नामरूप के अयोग्य। स्थूल का अर्थ है–नाम रूप के योग्य। प्रलयकाल में जड़-चेतन नाम-रूप के अयोग्य होने से सूक्ष्म कहलाते हैं और सृष्टिकाल में जड़-चेतन नाम रूप से युक्त होने के कारण स्थूल कहलाते हैं। प्रलयकाल में जीवात्माओं के स्थूल देव, मनुष्यादि शरीरों से रहित होने के कारण उनमें नाम रूप का व्यवहार नहीं होता है। सृष्टिकाल में शरीर के माध्यम से देव, मनुष्यादि नाम तथा उनके अनुसार रूप का व्यवहार जीवात्माओं में होता है। इसी तरह सृष्टि अवस्था में जड़ पदार्थों में भी पृथ्वी, जल, तेज आदि नामों एवं उनके रूपों से व्यवहार होता है। प्रलयकाल में वैसा व्यवहार नहीं होता है। सूक्ष्म जड़-चेतन से विशिष्ट ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है और स्थूल जड़-चेतन से विशिष्ट ब्रह्म ही जगत् रूप कार्य है।।१।।

पुरूषार्थ रूप चित्त तत्त्व के बिना जो अचेतन प्रतीत होता है और देहानुस्मरण के समय आत्म-स्वरूप यथार्थ रूपेण प्रकाशित नहीं होता। जीवात्म स्वरूप के प्रतीति में अचेतन की प्रतीति नहीं होती, उसे परमात्मा की माया समझे। अर्थात् जड़-चेतन दोनों में विलक्षणता है जैसे प्रकाश में अन्धकार भाषित नहीं होता और अन्धकार में प्रकाश भाषित नहीं होता उसी प्रकार जीवात्मा में माया की और माया में जीवात्मा की प्रतीति नहीं होती।।२।।

(शेष अगले अङ्क में)

श्रीवैष्णवव्रत निर्णय तालिका

वर्ष : २०१५-१६

क्र.सं.	मास	पक्ष	तिथि	दिन	दिनाङ्क	व्रतनाम
१.	चैत्र	शुक्ल	११	मङ्गलवार	३१-०३-२०१५	कामदा
२.	वैशाख	कृष्ण	११	बुधवार	१५-०४-२०१५	बरुथिनी
३.	वैशाख	शुक्ल	११	बुधवार	२९-०४-२०१५	मोहिनी
४.	ज्येष्ठ	कृष्ण	११	गुरुवार	१४-०५-२०१५	अचला
५	ज्येष्ठ	शुक्ल	११	शुक्रवार	२९-०५-२०१५	निर्जला
६.	शुद्ध आषाढ़	कृष्ण	१२	शनिवार	१३-०६-२०१५	योगिनी
७.	अधिक आषाढ़	शुक्ल	११	रविवार	२८-०६-२०१५	पुरुषोत्तमी
८.	अधिक आषाढ़	कृष्ण	११	रविवार	१२-०७-२०१५	पुरुषोत्तमी
९.	शुद्ध आषाढ़	शुक्ल	११	सोमवार	२७-०७-२०१५	विष्णुशयनी
१०.	श्रावण	कृष्ण	११	सोमवार	१०-०८-२०१५	कामदा
११.	श्रावण	शुक्ल	११	बुधवार	२६-०८-२०१५	पुत्रदा
१२.	भाद्रपद	कृष्ण	११	बुधवार	०९-०९-२०१५	जया
१३.	भाद्रपद	शुक्ल	११	गुरुवार	२४-०९-२०१५	पद्मा
१४.	आश्विन	कृष्ण	११	गुरुवार	०८-१०-२०१५	इन्दिरा
१५.	आश्विन	शुक्ल	१२	शनिवार	२४-१०-२०१५	पापाङ्कुशा
१६.	कार्त्तिक	कृष्ण	११	शनिवार	०७-११-२०१५	रम्भा
१७.	कार्त्तिक	शुक्ल	११	रविवार	२२-११-२०१५	प्रबोधिनी
१८.	अगहन	कृष्ण	११	सोमवार	०७-१२-२०१५	उत्पन्ना
१९.	अगहन	शुक्ल	११	सोमवार	२१-१२-२०१५	मोक्षदा
२०.	पौष	कृष्ण	१२	बुधवार	०६-०१-२०१६	सफला
२१.	पौष	शुक्ल	११	बुधवार	२०-०१-२०१६	पुत्रदा
२२.	माघ	कृष्ण	११	गुरुवार	०४-०२-२०१६	षट्तिला
२३.	माघ	शुक्ल	११	गुरुवार	१८-०२-२०१६	जया
२४.	फाल्गुन	कृष्ण	११	शनिवार	०५-०३-२०१६	विजया
२५.	फाल्गुन	शुक्ल	११	शनिवार	१९-०३-२०१६	आमलकी
२६.	चैत्र	कृष्ण	११	रविवार	०३-०४-२०१६	पापमोचनी
१.	चैत्र	शुक्ल	नवमी	रविवार	२९-०३-२०१५	श्रीराम नवमी व्रत
२.	वैशाख	शुक्ल	१४	रविवार	०३-५-२०१५	श्रीनृसिंह चतुदर्शी व्रत
३.	भाद्रपद	कृष्ण	९	रविवार	०६-०९-२०१५	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
४.	भाद्रपद	शुक्ल	१२	गुरुवार	२४-०९-२०१५	श्रीवामन द्वादशी
५.	वैशाख	शुक्ल	६	शुक्रवार	२४-४-२०१५	श्रीरामानुजाचार्य जयन्ती
६.	फाल्गुन	शुक्ल	१३	सोमवार	२१-०३-२०१६	श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जयन्ती

गृहारम्भ मुहूर्त्त

(१) वैशाख शुक्ल एकादशी बुधवार २९-०५-२०१५ को ३:१६ से ४:४३ तक (रात्रि में)।
(२) वैशाख शुक्ल द्वादशी गुरुवार ३०-०५-२०१५ को ८:१६ से १०:२९ तक (दिन में)।

●

गृहप्रवेश मुहूर्त्त

(१) वैशाख कृष्ण द्वादशी गुरुवार १६-०४-२०१५ को ८:२४ से १०:४० तक (रात्रि में)।
(२) वैशाख शुक्ल एकादशी बुधवार २९-०४-२०१५ को ३:१६ से ४:४३ तक (रात्रि में)।
(३) वैशाख शुक्ल द्वादशी गुरुवार ३०-०४-२०१५ को ६:२० से ८:१५ तक (दिन में)।
(४) ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी गुरुवार १४-०५-२०१५ को ५:२८ से ७:२३ तक (दिन में)।
(५) ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी शुक्रवार १५-०५-२०१५ को ५:२५ से ७:२० तक (दिन में)।

●

द्विरागमन मुहूर्त्त

पश्चिम से पूर्व, दक्षिण से उत्तर, नैऋत्य से ईशान, अग्नि से वायु कोण के लिए—

(१) वैशाख शुक्ल पञ्चमी गुरुवार २३-०४-२०१५ को दिन में ६:४५ से १०:५४ तक।
(२) वैशाख शुक्ल षष्ठी शुक्रवार २४-०४-२०१५ को दिन में ३:२४ से ५:३६ तक।
(३) वैशाख शुक्ल द्वादशी गुरुवार ३०-०४-२०१५ को दिन में ८:१६ से १०:२९ तक।
(४) वैशाख शुक्ल त्रयोदशी शुक्रवार ०१-०५-२०१५ को प्रातः ६:१५ से ८:११ तक।
(५) ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्थ्यी शुक्रवार ०८-०५-२०१५ को प्रातः ८ से ९:५८ तक।
(६) ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी गुरुवार १४-०५-२०१५ को प्रातः ५:३० से ९:३८ तक।

●

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।